शोधादर्श

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीथकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५४

वीर निर्वाण संवत् २५३१ **नवम्बर २००४ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण–कीर्तन : गुरुणां गुरुः गोपालदास वरैया	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	अरहंत या अरिहंत	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	८
३.	सम्पादकीय : दिगम्बर जैन समाज व श्रमण संघों पर सशक्त नेतृत्व का एक ही तरीका	श्री अजित प्रसाद जैन	११
४.	मथुरा से प्राप्त सं. २६६ का अभिलेख	डॉ. शशिकांत	२१
५.	नौवे दशक की ओर : श्री अजित प्रसाद जैन	श्री सुरेश जैन 'सरल'	२३
६.	आओ कुछ ऐसा करें	सौ. पूजा जैन	२८
७.	देखो सूरज आया द्वारे	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	२६
८.	शोध सारांश : वेदव्यास एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराणों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. (कु०) नीलम जैन	३०
६.	जनगणना २००१ के अनुसार भारत में जैनधर्मानुयायी	श्री रमा कान्त जैन	३३
१०.	आत्मानुशासन से ही देश की उन्नति सम्भव	आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज	३५
११.	स्वास्थ्य चर्चा– शरीर में रेडियो धर्मी विकिरण से बचाव		३६
१२.	सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	रमा कान्त जैन	३७

१३. दीपावली	श्री सुखमाल चन्द जैन	३८
१४. चिन्तन–कण :		
कुण्डगामंपुरं	श्री अजित प्रसाद जैन	३६
मूलगुण	श्री मनोहर मारवडकर	४०
१५. भूले बिसरे :	श्री रमाकान्त जैन	
चित्रकार बसावनलाल, आगरा		४१
कथाशिल्पी ऋषभचरण जैन		४२
१६. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.		
प्रगति प्रतिवेदन २००३–२००४	श्री अजित प्रसाद जैन	४४
१७. साहित्य सत्कार :		
Philosopher Karma Scientists;		
शुद्धोपयोग विवेचन	अजित प्रसाद जैन	४६
जीवन दर्पण; मानस ब्रज भाषा काव्य		
कुसुमाकर; प्रतिष्ठा–प्रभा स्मारिका वर्ष २००१	श्री रमा कान्त जैन	५०
१८. समाचार विमर्श :	श्री अजित प्रसाद जैन	
महाराष्ट्र शासन ने मुनि श्री तरुणसागरजी महाराज को राजकीय अतिथि का दर्जा दिया		५२
एक ६ वर्ष की बालिका की साध्वी दीक्षा		५४
भ. पार्श्वनाथ त्रिसहस्राब्दि महोत्सव		५६
निर्वाण लाडू		५६
राजनेताओं के लिए भी शैक्षिक योग्यता और प्रशिक्षण		५७
भट्टारक सम्मेलन		५८
ये महंगी चातुर्मास आमंत्रण पत्रिकाएं		६०
हमारे राजनेताओं का मांसाहार शौक :		
शाकाहार पर दुगना टैक्स		६२
जवाहरात व्यवसायी बढेर जी का मोक्षगमन		६३
१९. महावीर गुणधाम	श्री दयानंद जड़िया 'अबोध'	६३
२०. समाचार विविधा		६४
२१. अभिनन्दन		६६
२२. शोक संवेदन		७१
२३. आभार		७२
२४. पाठकों के पत्र		७३
२५. अनुक्रमणिका शोधादर्श ४६–५४	श्री रमा कान्त जैन	७६

गुरुगुण - कीर्तन

गुरुणां गुरुः गोपालदास वरैया

अद्वितीया यस्य वाणी, को न यं प्रति नतः प्राणी,
वादि-गज-केशरि- 'वरैया', यस्य नयसिद्धौ विलासः।
जयतु गुरुगोपालदासः !
- श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

श्रीमद्वरैयावरवंशजन्मा सन्मान्यमान्यार्चितपादपद्मः।
गोपालदासः स गुरुर्गुरुणामुपासनीयो विदुषां न केषाम्।।
- पं. अमृतलाल साहित्याचाय

भोगाभोगा **विद्युन्माला**-लोला एवं ज्ञात्वा ज्ञात्वा।
तत्रासक्तो यो नो जातो गोपालोऽसौ वन्द्यो वन्द्यैः।।
- पं. पन्नालाल साहित्याचार्य

ओ मार्ग प्रदर्शक विद्वज्जन ! ओ अग्रगणी नेता समाज
गोपालदास गुरुवर्य्य श्रेष्ठ ! श्रद्धाञ्जलि अर्पण तुम्हें आज।।
-श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ

हरी काल ने काया पर, जब तक नभ-सूर्य डगर है।
गुरु गोपालदास का तब तक, जग में नाम अमर है।।
-श्री शर्मनलाल 'सरस'

'गुरु गोपालंदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ' से उद्धृत उपर्युक्त काव्यांशों में जिन महाभाग गोपालदास जी को श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये हैं उनका साक्षात् दर्शन करने का सौभाग्य तो मुझे नहीं प्राप्त रहा, क्योंकि वह मेरे जन्म से बहुत पहले ही दिवंगत हो चुके थे। पर उनके नाम से मैं अपनी किशोरावस्था से ही परिचित रहा। उनका लिखा '**सुशीला**' उपन्यास मेरे पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी के पुस्तक संग्रह में संग्रहीत था। उसके कथानक की रोचकता ने मुझे मुग्ध किया था यद्यपि उसमें प्रसंगानुसार किया गया दार्शनिक विवेचन मेरी बुद्धि के परे रहा। पिताजी से मिलने आने वाले पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, प्रो. खुशालचंद्र गोरावाला प्रभृति विद्वानों के मुखारबिन्द से पिताजी से चर्चा करते हुए 'गुरुणां गुरुः' अर्थात् उनके गुरुओं के गुरु के रूप में अक्सर पं.

गोपालदास वरैया का नाम मेरे कर्णकुहुरों में पड़ता रहा। उनकी जन्म शती के उपलक्ष में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद द्वारा सन् १९६७ ई. में प्रकाशित महाकाय **'गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ'** हमारे यहाँ आया था क्योंकि उसमें पिताजी के तथा भाई साहब डॉ. शशिकान्त जी के लेख समाहित थे। उस समय तो मैं अन्य व्यस्ततावश उक्त ग्रन्थ को पढ़ने का समय नहीं निकाल पाया, और फिर उसे भूल भी गया। अभी कुछ माह पूर्व 'जैन गज़ट' साप्ताहिक में श्री कपूरचन्द पाटनी का उनकी स्मृति में लेख पढ़कर मुझे उक्त ग्रन्थ की स्मृति ताजा हो गई और मैं उसके पन्ने उलटने-पलटने लगा। ग्रन्थ में समाहित बरैया जी के उदात्त जीवन परिचय और उनसे सम्बन्धित विभिन्न मनीषियों के संस्मरणों आदि ने मेरे मन को ऐसा अभिभूत किया कि मैं उनके सम्बन्ध में अपनी लेखनी चलाने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

सामान्य से असामान्य बनने वाले, अल्प अवधि में ही स्व अध्यवसाय से ज्ञान और यश की ऊँचाइयों का स्पर्श करने वाले, कर्मठता, सादगी, सहनशीलता और सत्यनिष्ठा के मूर्तिमान किसी व्यक्तित्व का यदि परिचय पाना हो तो पं. गोपालदास वरैया के जीवन में झांकना ही होगा। लम्बा कद, लम्बोतरा चेहरा, गौर वर्ण, सिर पर पगड़ी, भाल पर लम्बा चन्दन-तिलक, आँखों पर ऐनक, कटीली काली मूँछे, अँगरखे पर दुपट्टा, घुटनों तक धोती और पैरों में देशी जूता यह एक चित्र है उस व्यक्तित्व का जो पं. गोपालदास के नाम से जाना जाता रहा था। यमुना तट पर बसे आगरा नगर के मानपाड़ा मोहल्ले के निवासी दिगम्बर जैन एछिया गोत्रीय लाला लक्ष्मणदास वरैया के पुत्र रूप में उनका जन्म विक्रम संवत् १९२३ (१८६६ ई.) की चैत्र कृष्ण द्वादशी को हुआ था। जब वह शिशु ही थे उनके पिता काल कवलित हो गये थे । तब उनकी माताजी ने बड़े धैर्यपूर्वक उनका लालन-पालन किया और शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की। उन्होंने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। बचपन और किशोरावस्था में उनकी धर्म की ओर रुचि नहीं थी। अन्य लड़कों के समान खेलना-कूदना, मजा-मौज करना, शेर-चौबाले गाना उनका दैनिक कृत्य था। उनकी वह किशोर अवस्था महनीय नहीं थी। उन्नीस वर्ष की वय में उनका विवाह हो गया। गृहस्थी का भार आने पर उन्होंने अजमेर में रेलवे कार्यालय में १५ रुपये मासिक पर नौकरी कर ली। उस समय अन्य अल्हड़ युवकों की भांति वह अपने में ही मस्त-व्यस्त रहते थे। धर्म, समाज, संस्कृति और साहित्य से उनका कोई सरोकार नहीं था। बाइस वर्ष की अवस्था में उन्हें प्रथम पुत्र लाभ हुआ, किन्तु वह जल्दी ही चल बसा। १८९० ई. में उनके कौशल्याबाई

नामक पुत्री हुई और तदनन्तर १८९२ ई. में जब वह २६ वर्ष के थे माणिकचन्द्र नामक पुत्र हुआ, किन्तु किसी रोगवश उसकी एक आँख खराब हो गई जिससे उसकी शिक्षा बाधित हो गई। माणिकचन्द्र के बालमुकन्द और चन्द्रभान नामक दो पुत्र हुए। उनकी माता और जीवन संगिनी के नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उनकी पत्नी की प्रखर प्रकृति की चर्चा अनेक महानुभावों के संस्मरणों में आई है। पर, जैसा महात्मा भगवानदीन ने लिखा है, 'उनकी संगिनी उनके अणुव्रतों की परीक्षा की कसौटी थी जिस पर पंडित जी हमेशा सौंटंच सोना ही साबित हुए।' वैसे उस शोले के भीतर भी कहीं शीतल धारा प्रवाहित रहती थी, यह भी कुछ संस्मरणों से विदित हुआ।

अजमेर में रहते हुए एक बार जैन मंदिर में उन्होंने पण्डित मोहनलाल जैन से साहित्य, धर्म और दर्शन की जो चर्चा सुनी उससे वह बड़े प्रभावित हुए। उन्हें चर्चा में ऐसा रस आया कि उसने उनकी जीवनधारा ही परिवर्तित कर दी। पण्डित जी की संगति में वह जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगे। दो वर्ष बाद उन्होंने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और अजमेर में ही वह रायबहादुर सेठ मूलचंद नेमिचंद के यहाँ इमारत बनवाने के काम पर २० रुपये मासिक पर नौकरी करने लगे। उनकी ईमानदारी, परिश्रम और सत्यनिष्ठा से सेठ जी प्रसन्न थे। अजमेर में वह छह-सात वर्ष तक रहे और वहां रहकर जैन पाठशाला में उन्होंने **लघुकौमुदी, जैनेन्द्र व्याकरण का अंश** और **न्यायदीपिका** ग्रन्थ पढ़े। गणित में रुचि होने से **गोम्मटसार** के अध्ययन में भी उनका मन रमा। अजमेर के सुप्रसिद्ध पण्डित मथुरादास और **'जैन प्रभाकर'** के सम्पादक बाबू बैजनाथ से उनका मेलजोल रहता था। आगरा के पं. बलदेवदास भी उनके विद्यागुरु रहे। उनसे उन्होंने **पञ्चाध्यायी** का अध्ययन किया।

सन् १८९१ ई. में सेठ मूलचन्द के साथ वह जैनबिद्री मूडबिद्री की यात्रा को गये और लौटते समय मुम्बई आये और वहीं रम गये। हिसाब-किताब में तेज होने के कारण उन्हें वहाँ एस. जी. टेलरी नामक यूरोपियन कम्पनी में ४५ रुपये मासिक की नौकरी मिल गई। उनके काम से प्रसन्न हो थोड़े ही समय में मालिकों ने उनकी पदवृद्धि कर वेतन ६० रुपये मासिक कर दिया। तभी एक दिन उन्हें अपनी स्नेहमयी माता के निधन का दुखद समाचार मिला और वह बिना छुट्टी लिये आगरा चले गये। कम्पनी ने उन्हें नौकरी से अलग कर दिया। मातृशोक कम होने पर वह फिर मुम्बई आये और जुहारुमल मूलचन्द की दुकान पर मुनीम हो गये। कुछ समय पश्चात एस. जे. टेलरी कम्पनी में पुनः आ गये और काफी समय तक वहाँ कार्यरत रहे। सन् १८९४

ई. में उन्होंने दिल्ली वाले लाला श्यामलाल जौहरी के साथ जवाहरात की कमीशन एजेंटी का काम शुरू किया। पर अपने अचौर्य और सत्य व्रत का उसमें पालन होते न देख छह माह बाद उससे अलग हो गये और 'गोपालदास लक्ष्मणदास' नाम से गल्ले का काम करने लगे। उसमें यथेष्ट लाभ न होने से पाँच-छह माह बाद उसे बन्द कर दिया। सन् १८९५ ई. में पं. धन्नालाल काशलीवाल के साझे में उन्होंने रुई, अलसी, चाँदी आदि की दलाली का काम शुरू किया। सन् १८९६ ई. में साझा खत्म कर स्वतन्त्र रूप से उक्त कार्य करने लगे और दो वर्ष तक उसे करते रहे। सन् १९०१ ई. में उन्होंने मुम्बई की गांधी नाथारंग फर्म के मालिक सेठ रामचन्द्र नाथा के साझे में मोरेना में आढ़त की दुकान खोल ली जो चार वर्ष चली। मोरेना में उस दुकान में लाभ न होने पर सन् १९०५ ई. में सेठजी ने उन्हें शोलापुर बुला लिया जहाँ वह दो वर्ष कार्य करते रहे। तदनन्तर उन्होंने पुनः मोरेना आकर सेठ हरिभाई देवकरण और सेठ रावजी नानकचन्द्र के सहयोग से 'गोपालदास माणिकचन्द्र' नामक स्वतन्त्र आढ़त की दुकान खोली और 'माधव जीनिंग फैक्टरी लिमिटेड' की स्थापना की जिसमें काफी परिश्रम किया, किन्तु कतिपय कारणों से दो वर्ष बाद उससे सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा। तदनन्तर पुनः गांधी नाथारंग के साथ कार्य किया। सन् १९१३-१४ ई. में रायबहादुर सेठ कल्याणमल और तदनन्तर सन् १९१५ ई. से रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्द्र के साथ साझे में कार्य किया। इस प्रकार अपने अर्थोपार्जन हेतु सन् १८८५ ई. से सन् १९१७ ई. में अपनी मृत्यु पर्यन्त ३२ वर्ष का एक कर्मठ जीवन सत्य और अचौर्य व्रतों का कड़ाई से पालन करते हुए उन्होंने, बिना समाज पर भार बने, स्वालम्बन से जिया था। यह बात दीगर है कि वह सफर काफी संघर्षपूर्ण रहा और लक्ष्मी की अपेक्षित कृपा से वह वंचित रहे।

गोपालदास जी के सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश मुम्बई प्रवास के दौरान हुआ। पं. धन्नालाल के उद्योग से वहाँ सन् १८९२ ई. को मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को दिगम्बर जैन सभा की स्थापना हुई जिसमें वह सहभागी रहे। तदनन्तर सन् १८९३ ई. में महासभा की स्थापना हुई और मुम्बई में उसकी संस्कृत पाठशाला खुली जिसमें पं. जीवराम लल्लूराम शास्त्री से उन्होंने **परीक्षामुख, चन्द्रप्रभ काव्य और कातन्त्र व्याकरण** का अध्ययन किया। सन् १८९६ ई. के लगभग भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय स्थापित हुआ जिसका कार्य बड़ी कुशलता से सम्पादित किया। जनवरी सन् १९०० ई. से दिगम्बर जैन सभा मुम्बई की ओर से **'जैन मित्र'** पत्र पहले ६ वर्ष

तक मासिक रूप में और तदनन्तर पाक्षिक रूप में प्रकाशित हुआ जो १५ जुलाई, १९०८ ई. तक पं. गोपालदास जी के सम्पादकत्व में निकलता रहा। उनके कार्यकाल में महासभा, जैन मित्र, संस्कृत पाठशाला और परीक्षालय ने पर्याप्त उन्नति की।

जैन ग्रन्थों के अध्ययन से उनके मन में उनके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अपनी कुशाग्र बुद्धि से उन्होंने शीघ्र ही उनका हार्द ग्रहण कर लिया। उनकी वाणी पर सरस्वती का वास था। उनका प्रवचन तात्विक परन्तु नीरसता से परे होता था और दो-तीन घंटे तक धाराप्रवाह बोलते रहने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। वह जगह-जगह प्रवचन देने और शास्त्रार्थ करने जाने लगे। अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा उन्होंने अजमेर में आर्यसमाज के दर्शनानन्द सरस्वती को शास्त्रार्थ में अपना लोहा मनवा लिया। इटावा की 'जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा' ने जब शास्त्रार्थ हेतु अपने कार्यक्रम शुरु किये तो पंडित गोपालदास जी को उसका अगुआ बना लिया जिससे उनकी भाषण शक्ति का खूब विकास हुआ। उनकी विद्वत्ता और वक्तव्य कला से प्रभावित होकर बम्बई प्रान्तिक सभा ने उन्हें 'स्याद्वाद वारिधि' और इटावा की 'जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा' ने 'वादिगज केसरी' की उपाधि से अलंकृत किया। ४ जून, १९११ ई. को वह कलकत्ता के गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के पण्डितों द्वारा 'न्याय वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किये गये।

उनकी लेखन कला का विकास 'जैन मित्र' के माध्यम से हुआ। उनकी भाषा कोरी पाण्डिताऊ नहीं थी, अपितु पाण्डित्य को लिये सुसंस्कृत थी। लेखन में तार्किकता का पुट रहता था। उस समय धार्मिक विवादों का बाहुल्य था। निर्माल्य चर्चा, तेरहपन्थ-बीसपंथ आदि की चर्चाएं चलती थीं जिन पर वह प्रमाण पुरस्सर लेख प्रस्तुत करते थे। 'उन्नति' शीर्षक से उन्होंने एक लेखमाला भी चालू की थी और 'एक जैनी' नाम से वह धार्मिक विवादों के विषय में लिखते थे। 'जैन मित्र' के प्रथम वर्ष के अंक ६ में उनका सम्पादकीय था 'उन्नति का मार्ग विरोध के दांतों में होकर है।' जहाँ सरस शैली में रोचक कथानक के माध्यम से **'सुशीला'** उपन्यास में उन्होंने गहन जैन धार्मिक-दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण किया वहीं अपने शिष्य मोतीलाल के अध्यापनार्थ प्रश्नोत्तर शैली में **'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका'** की रचना की। साथ ही जैनागम के सभी ज्ञातव्य तथ्यों को संकलित कर **'जैन सिद्धान्त दर्पण'** रचा। **जैन जागरफी, जैन तत्त्वमीमांसा, सार्वधर्म** प्रभृति अनेक ट्रैक्ट आदि भी लिखने का उन्हें श्रेय है।

मुम्बई में रहते हुए गोपालदास जी जैन धर्म शिक्षा के कार्य से जुड़ चुके थे और यत्र-तत्र स्थापित जैन विद्यालयों और परीक्षालयों के पाठ्यक्रमों में जैन ग्रन्थों के ही पठन-पाठन पर उनका बल रहा। जब व्यापार के सिलसिले में महानगरी मुम्बई छोड़ वह चम्बल घाटी में स्थित मोरेना नगर पहुँचे तो उनके मन में वहाँ पर अपनी एक जैन सिद्धान्त पाठशाला खोलने की ललक जागी। उनके पाण्डित्य की ख्याति पहले ही प्रसारित हो चुकी थी। एक दिन स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, वाराणसी में पढ़े दो छात्र सर्वश्री बंशीधर (इंदौर) और उमरावसिंह उनसे **गोम्मटसार, त्रिलोकसार** प्रभृति ग्रन्थों का अध्ययन करने की इच्छा से उनके पास मोरेना जा पहुँचे और इस प्रकार उनके विद्यालय का श्रीगणेश हो गया। तदनन्तर और शिष्यगण जुड़ते चले गये। उस विद्यालय में, अपने व्यवसाय से समय निकालकर, वह शिष्यों को स्वयं निःशुल्क शिक्षा देते थे तथा उनकी सब तरह सहायता करने को तत्पर रहते थे। अस्तु वह अपने शिष्यों के श्रद्धाभाजन बने रहे। उनकी प्रारंभिक शिष्य मंडली में उपर्युक्त सर्वश्री बंशीधर और उमरावसिंह के अतिरिक्त पं. माणिकचन्द्र कौन्देय, पं. मक्खनलाल, पं. बंशीधर (शोलापुर), पं. देवकीनन्दन (बरुआसागर) और पं. खूबचन्द्र प्रमुख रहे। कालिन्दी तट पर विहार करने वाला गोपाल चम्बल घाटी में गुरु गोपालदास के नाम से विख्यात हो गया। उनसे शिक्षा प्राप्त शिष्यगण समाज में प्रकाण्ड पण्डितों के रूप में उदित हुए और उन शिष्यों के (स्व.) पं. कैलाशचंद्र शास्त्री प्रभृति शिष्यों और उनके भी शिष्यानुशिष्यों से समाज में विद्वान पण्डितों की बगिया काफी अर्से तक पल्लवित पुष्पित रही। इस प्रकार उन्होंने 'गुरुणां गुरुः' विरुद को सार्थक किया।

निस्स्वार्थ सेवा और परोपकार वृत्ति के धनी गोपालदास जी नियम-कानून का कड़ाई से पालन करने के पक्षधर थे। जीवन में पञ्चाणुव्रतों का पालन करने वाले चारित्रवान गोपालदासजी को सत्य का पक्ष लेना सबसे अधिक प्रिय था भले ही उसके चलते उन्हें आर्थिक हानि हो जाय, उनकी किसी से वर्षों की मैत्री भंग हो जाय या औरों की आलोचना के वह शिकार हो जायें। उनकी सत्यनिष्ठा को ध्यान में रख ग्वालियर की तत्कालीन सिन्धिया सरकार ने उन्हें मोरेना में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया था। वह वहाँ चेम्बर ऑफ कामर्स तथा पंचायली बोर्ड के भी सदस्य रहे। बिना किसी प्रलोभन में पड़े वह निष्पक्ष निर्णय देते थे। किसी की लल्लो-चप्पो करना उन्हें नहीं आता था। जिस बात को वह सत्य मानते थे, उसके कहने में उन्हें कोई संकोच या भय नहीं होता था। सन् १९१० ई. में मेरठ की अदालत में चले ऐतिहासिक

दस्सा-बीसा मुकदमे में पण्डित जी ने शास्त्रों के आधार पर दस्सों के पक्ष में जो गवाही दी थी उससे रुष्ट हो कतिपय व्यक्तियों ने उनके व्यक्तित्व को लांछित करना चाहा, उनके बहिष्कार का प्रस्ताव भी पास किया, किन्तु वह अपने विचारों में हिमालय के समान अडिग बने रहे। उनके समर्थकों की भी कमी नहीं थी। उत्तर भारत के अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों के विरोध के बावजूद सन् १९१२ ई. में बेलगाँव में सम्पन्न 'दक्षिण महाराष्ट्र सभा' के विशिष्ट अधिवेशन में वह सभापति बनाये गये।

दिगम्बर जैन शास्त्रों पर अगाध श्रद्धा रखने वाले पं. गोपालदास जी, जैसा महात्मा भगवानदीन ने उल्लेख किया है, शनैः शनैः परीक्षा प्रधानी होते जा रहे थे और तदनुरूप अपने विचारों में उन्होंने संशोधन भी किये। वह एक सुचिन्तक थे। उनके विचार क्रान्तिकारी होते थे। उन्होंने 'मांसभोजी भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है या नहीं' इस विषय पर भी एक अप्रिय सत्य कह डाला था जिस पर भी समाज में उस समय काफी उछल कूद मची थी। किन्तु वह अविचलित रहे।

अन्त समय तक जैन धर्म की प्रभावना और जैन सिद्धान्त की शिक्षा के प्रचार हेतु समर्पित रहे पं. गोपालदास जी की यह प्रतिज्ञा थी कि धर्म कार्य हेतु समाज में कहीं भी जाने पर वह वास्तविक मार्ग व्यय के अतिरिक्त विदाई में कुछ नहीं लेवेंगे। एक बार महाराजा छतरपुर ने उन्हें विदाई में मोतियों की माला भेंट करनी चाही तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर पुष्पमाला ही ग्रहण की। ऐसी थी उनकी निस्पृहता।

सादा रहन-सहन, शुद्ध-सात्विक खान-पान और व्यसन-मुक्ति उनकी पहचान रही। उन्माद रोग से ग्रसित गृहलक्ष्मी, परिस्थितिवश अनपढ़ रहा पुत्र, रोगों से विभूषित काया और भौतिक लक्ष्मी की अकृपा जैसी विषम परिस्थितियों में भी वह अपना व्यवसाय और सामाजिक एवं धार्मिक कार्य बड़े उत्साह व लगन के साथ करते रहे। किन्तु इन अनेक रोग-शोकों ने उन्हें मात्र ५१ वर्ष की वय में अकाल काल कवलित कर दिया। उनके निधन की निश्चित तिथि तो विदित नहीं है, किन्तु 'जैन हितैषी' के अप्रैल १९१७ ई. के अंक में उनके सम्बन्ध में प्रकाशित नाथूराम प्रेमी जी के संस्मरणात्मक लेख से प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु उसके आसपास ही हुई होगी। भले ही वह आज हमारे बीच नहीं हैं, उनके सद्गुणों, व्यक्तित्व और कृतित्व की स्मृति युग-युगान्तर तक अक्षुण्ण रहेगी।

- रमा कान्त जैन

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

अरहंत या अरिहंत

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

('अरहंत' या 'अरिहंत' में से कौन पाठ शुद्ध और प्रामाणिक है, यह विवाद काफी पुराना है। डॉ. ज्योति प्रसाद जी ने ११ फरवरी, १९७१ को प्रकाशित जैन सन्देश (शोधांक २९) में इस पर प्रकाश डाला था। उनका उक्त लेख यहाँ साभार उद्धृत है– सह-सम्पादक)

दि. ५ नवम्बर, १९७० के **जैन-सन्देश** एवं **जैन गज़ट** में विद्वद्वर्य पं. माणिकचंद जी न्यायाचार्य का लेख तथा उसके प्रत्युत्तर में २६ नवम्बर के पत्रों में पं. हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री का लेख प्रकाशित हुए हैं। इन लेखों ने एक रोचक तथा साथ ही पर्याप्त महत्वपूर्ण विवाद उत्पन्न कर दिया कि जैन परम्परा के सर्वोपरि महामन्त्र के प्रथम पद का शुद्ध पाठ 'णमो अहंताणं' है या 'णमो अरिहंताणं'?

प्रथम विद्वान ने युक्ति, तर्क, व्याकरण तथा जिनधर्म की मूलाधार वीतरागमयी अहिंसक भावना की दृष्टि से 'अरहंत' पाठ का औचित्य प्रदर्शित किया है। वह यह कह कर चले थे कि "प्रकरण में हमें यह विचारना है कि 'अरिहंताणं' पाठ ठीक है या 'अरहंताणं' बोलना आदरणीय है। सो यह सिद्ध करने में तो वह सफल हुए प्रतीत होते हैं कि 'अरहंताणं' पाठ अपेक्षाकृत शुद्ध भी है और अधिक आदरणीय भी। उनकी बात के पीछे लगभग पौन शताब्दी के गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन तथा अनुभव का बल है।

पं. हीरालाल जी ने, मुख्यतया **धवलाकार** स्वामी वीरसेन के आधार पर, यह प्रगट किया है कि 'अरिहंताणं' पाठ बहुत प्राचीन है, संभवतया **षट्खण्डागम** के उद्धारकर्ता मुनि पुष्पदंत जितना। उन्होंने न्यायाचार्य जी के 'अरहंताणं' के पक्ष में दिये गये तर्कों या युक्तियों का कोई उत्तर नहीं दिया और न यही कहा कि 'अरहंताणं' पाठ गलत है या आदरणीय नहीं है। उधर न्यायाचार्य जी ने भी 'अरिहंत' पाठ की प्राचीनता या अनेक पुरातन आचार्यों द्वारा उसके प्रयुक्त हुए होने को अस्वीकार नहीं किया।

यह भी तथ्य है कि श्वेतांबर परम्परा में प्रायः सर्वत्र 'अरिहंताणं' पाठ का प्रचलन है। कानजीस्वामी और उनके अनुयायी वर्ग में भी यही पाठ प्रचलित है। मुनि

विद्यानंद जी प्रभृति अनेक दिगम्बर मुनि भी इसी पाठ का प्रयोग करते हैं। सस्ते कलेण्डरों ने तो इस पाठ का प्रचार करने का ठेका सा ले लिया है।

वर्तमान दिगम्बर पण्डितों में से अधिकांश भी इसी पाठ को बोलते और लिखते लगते हैं, कम से कम वे इन दोनों पाठों में से किसी एक का विशेष पक्ष करते प्रतीत नहीं होते। एक तीसरा पाठ भेद 'अरुहंत' भी मिलता है किंतु उसका प्रचार बहुत कम रहा है।

जहाँ तक पाठों की प्राचीनता का प्रश्न है, तीनों ही रूपों की प्राचीनता प्रथम शती ईस्वी तक पहुंच जाती है। दिगम्बर परम्परा में तो स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द ने तीनों ही रूपों को सार्थक मानते हुए उनका प्रयोग किया और श्वेतांबर परम्परा में भी लगभग उसी काल में हुए वज्रस्वामी ने महामन्त्र का उद्धार किया बताया जाता है।

इस प्रसंग में यह ध्यातव्य है कि इस महामंत्र में पंच परम इष्टों, पूज्य और उपास्य पदों, को नमस्कार किया गया है और, कम से कम अर्थापेक्षा, उसे अनादि-निधन, शाश्वत मान्य किया जाता है। विवक्षित पद इनमें से प्रथम परमेष्ठी का द्योतक है। सामान्यतया सहज रूप में सभी पुरातन आचार्य एवं ग्रन्थकार, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के रहे, प्रथम परमेष्ठि को 'अरहंत परमेष्ठि' ही कहते रहे हैं। संस्कृत में तो 'अरहंत' के ही रूपान्तर अर्हंत्, अर्हन् आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं, 'अरिहन्त' का संस्कृत रूपान्तरण कहीं भी देखने में नहीं आया। **तत्वार्थसूत्रकार** उमास्वाति, समन्तभद्र, पूज्यपाद आदि समस्त आचार्यों ने 'अरहंत' पाठ की परोक्ष मान्यता सूचित की है। प्राकृत ग्रंथकारों ने दोनों, कभी-कभी तीनों ही पाठ भेद प्रयुक्त किये, किंतु क्या ऐसा नहीं लगता कि जब 'अरहंत' शब्द को उन्होंने सहज रूप में लिया, उसके पाठान्तरों का प्रयोग करते समय उनकी सार्थकता स्पष्ट करने की आवश्यकता क्यों नहीं समझी ? पिछले समय में आचार्यकल्प पं. टोडरमल्ल, दौलतराम जी आदि ने तथा गुरु गोपालदास जी ने भी 'अरहंत' पाठ को सहज मान्य किया।

इसके अतिरिक्त पुस्तकारूढ़ या लिखित साहित्यिक परम्परा जहाँ तक मिलती है उसके भी लगभग २०० वर्ष पूर्व, ईसापूर्व द्वितीय शती के सम्राट खारवेल के **हाथी गुंफा शिलालेख** में मंगल रूप में **'नमो अरहंतानं। नमो सव सिधानं'** प्रयुक्त पाठ में तथा उसके उपरान्त के, शुंङ्ग-शक-कुषाण काल (२री शती ई.पू.-२री शती ई.) के मथुरा से प्राप्त अनेक जैन शिलालेखों में **'अरहंताणं'** पाठ ही प्रयुक्त हुआ है।

क्या यह संभावना नहीं है कि जब तक सरस्वती आंदोलन के फलस्वरूप, लिखित जैनसाहित्य का प्रणयन प्रारंभ नहीं हुआ था और अर्हंतोपदिष्ट अंग पूर्वों का ज्ञान गुरु परम्पराओं में मौखिक द्वार से चला आता था, उच्चारण दोष से अथवा अन्य किसी कारण से किन्हीं व्यक्तियों, वर्गों या समूहों में उस पद के रूपांतर यथा अरिहंत, अरहंत आदि प्रचलित हो गये और किन्हीं समर्थ आचार्य ने उस टेव को छुड़ाने के प्रयत्न के स्थान में उक्त रूपांतरों की ही सार्थकता का उद्घोष करके उन पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी हो ?

अस्तु, यह समस्या विचारणीय है। पं. कैलाशचंद्र जी के **'नमस्कार-महामंत्र'**, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री के **'मंगलमंत्र-णमोकार- एक अनुचिंतन'**, श्वेताम्बर मुनि कुंदकुंद विजयकृत **'नमस्कार चिंतामणि'**, पं. फूलचंद्र जी द्वारा सम्पादित **'ज्ञानपीठ पूजांजलि', धवल** और **जयधवल** की प्रस्तावनाएं, इत्यादि आधुनिक प्रकाशनों से, पं. टोडरमलजी के **'मोक्षमार्ग प्रकाशक'** से तथा उपर्युल्लिखित दोनों लेखों से भी यह निर्विवाद रूप से निश्चित नहीं होता कि महामंत्र के प्रथम पद का मूल पाठ क्या है ? वह पाठ एक ही होना चहिये, दो या तीन नहीं। इसी प्रसंग में, २८ जनवरी, १९७१ के **जैन संदेश** में प्रकाशित पं. रतनलाल जी कटारिया का विस्तृत लेख भी पठनीय है। उन्होंने 'अरिहंत' पाठ का समर्थन किया है, किन्तु उनके कई कथन चिन्तनीय हैं।

हम तो बचपन से 'अरहंत' पाठ ही सुनते-बोलते आये हैं और उसे जैन परम्परा के हार्द के अधिक अनुकूल एवं अनुरूप समझते हैं। किंतु यह तो अपनी समझ और रुचि की बात है, प्रकृत विषय की निर्णायक नहीं।

ऋषभ - स्तवन

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्वबोधा- दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

-मानतुंग कृत भक्तामर स्तोत्र

भावार्थ- समस्त शास्त्रों के तत्त्वज्ञान से चतुर बुद्धि वाले इन्द्रों ने तीनों लोकों के चित्त को हरने वाले गम्भीर स्तोत्रों से जिनका स्तवन किया है, मैं भी उन प्रथम जिनेन्द्र श्री ऋषभदेव का स्तवन करता हूँ।

सम्पादकीय-

दिगम्बर जैन समाज व श्रमण संघों पर सशक्त नेतृत्व का एक ही तरीका

संस्कार सागर (मासिक-इन्दौर) के जुलाई २००४ के अंक में इस वर्ष चातुर्मासरत सभी दिगम्बर जैन पिच्छीधारी साधु-साध्वियों की (चातुर्मास स्थल के पते सहित) सूची प्रकाशित की गई है जिसकी संक्षिप्तीकृत त्रिवार्षिक तालिका निम्न प्रकार है-

	२००२	२००३	२००४
(१) आचार्य	४६	५५	५३+२
(२) आचार्यकल्प	३	५	१
(३) बालाचार्य	१	१	१
(४) एलाचार्य	४	५	१
(५) उपाध्याय	१५	१७	११+३
(६) मुनि	२७२	१६१	३२३+१३
(७) गणिनी आर्यिकाएं	८	८	१०
(८) आर्यिकाएं	३२०	३५६	३४१+१७
(९) ऐलक	२४	३३	२५+८
(१०) क्षुल्लक	७१	६४	८७+१४
(११) क्षुल्लिकाएं	५३	६०	६८+४
योग	८२०	६२८	६२१+८५=१००६

८५ साधुओं के चातुर्मास स्थल ज्ञात नहीं हो सके।

जिन श्रेणियों में साधुओं की संख्या पिछले वर्ष की अपेक्षा कम परिलक्षित हो रही है वह या तो उस श्रेणी के साधुओं के स्वर्गवास के कारण या फिर अगली श्रेणी में प्रोन्नत हो जाने के कारण ही हुई होगी। इस वर्ष इन पिच्छीधारी साधु-साध्वियों ने ३०० से अधिक स्थलों पर चातुर्मास किया।

हमारी समझ में यह संख्या पूर्ण नहीं है तथा वास्तविक संख्या इससे कुछ अधिक ही होगी। अभी इसी चातुर्मास काल में संत शिरोमणि पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज ने अपने दयोदय अतिशय क्षेत्र जबलपुर में २५ बाल ब्रह्मचारी शिष्यों को, जिनमें से अनेक उच्च लौकिक या तकनीकी शिक्षा प्राप्त हैं, सीधे मुनि दीक्षा प्रदान कर दी। और भी कुछ आचार्यों ने अपने कतिपय शिष्यों को क्षुल्लक/मुनि दीक्षा प्रदान की हो तो कोई आश्चर्य नहीं। दो वर्ष पूर्व इंदौर में विराजित आचार्य श्री सिद्धांतसागरजी ने एक फैक्स सन्देश भेजकर सुदूर डीमापुर (नागालैंड) में चातुर्मासरत मुनि श्री सम्मानसागरजी को तथा बुवनाल में विराजित मुनि श्री सूर्यनंदी जी को आचार्य पदवी से विभूषित कर दिया। जबकि ये दोनों मुनिराज इन आचार्य श्री द्वारा दीक्षित भी नहीं थे, न ही उनके संघस्थ थे। यद्यपि डीमापुर की जागरूक समाज ने मुनि श्री सम्मानसागरजी द्वारा इस प्रकार प्राप्त आचार्य पदवी को मान्यता प्रदान नहीं की तथापि वे अब आचार्य तो बन ही गए और डीमापुर से अन्यत्र विहार करने पर अपने को आचार्य ही घोषित करते होंगे। यदि अन्य कुछ आचार्यों ने भी इस प्रकार नवीन आचार्य पदवियां सृजित कर दी हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

कालक्रमानुसार भरत क्षेत्र में इस पंचम काल में तथा अगले छठे काल में मोक्ष मार्ग के नेता तीर्थंकर भगवन्तों (अर्हन्तों) तथा स्वात्मरूप की लब्धि प्राप्त केवलज्ञानी सिद्धों का सद्भाव नहीं होता। अतः धर्म गुरुओं के रूप में मोक्ष मार्ग के साधक ही रह गए हैं जिनमें सर्वोच्च पदासीन आचार्य भगवन्त हैं। जैन धर्मानुयायी सामान्य जन उनमें जीवन्त तीर्थंकर की छवि देखने की वांच्छा करता है और कदाचित् उनमें से अनेक अपने को जीवन्त तीर्थंकर का ही प्रतिरूप मानते भी हैं और प्रचारित भी करते हैं। अतः आचार्यों की श्रद्धा-भक्ति, पूजा-अर्चना का भी अन्य श्रेणियों के साधुओं से अधिक होना स्वभाविक ही है। आचार्य श्री विरागसागर कृत 'शुद्धोपयोग' पुस्तक में उनका परिचय निम्न प्रकार दिया गया है- "महावीर के अवतार स्वरूप परम पूज्य प्रज्ञाश्रमण बालयोगी आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज।" इन आचार्य श्री के साध्वाचरण के विषय में हम चर्चा आगे करेंगे। अन्य भी कुछ ऐसे संत हैं जिनका विशाल शिष्य समुदाय तथा सहस्रों की संख्या में श्रद्धालु श्रावकगण उन्हें जीवन्त तीर्थंकर का स्वरूप मानते रहे हैं। जैन समाज में अपने महाव्रती धर्मगुरुओं (आचार्य, उपाध्याय, मुनि, आर्यिकाओं) के प्रति श्रद्धा विशेष ही है।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद कोई आचार्य अपने को दूसरे से हीन नहीं मानता। यदि किसी आचार्य श्री का ध्यान उनके साध्वाचार की किसी त्रुटि की ओर आकर्षित किया जाय तो वे निर्दोष चर्या के लिए विख्यात अन्य आचार्यों में और भी

अधिक (झूठी-सच्ची) त्रुटियां गिना देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, यह जानकर कि उनका प्रतिवाद प्रश्नगत आचार्य तो करेंगे नहीं।

विगत ३५-४० वर्षों से श्रमणाचार में शिथिलाचार उतरोत्तर वृद्धिंगत हो रहा है जिसके कहीं रुकने के आसार भी नजर नहीं आते। सन् १९८१ में श्री बाहुबली सहस्राब्दि अभिषेक महोत्सव के सुअवसर पर हुए मुनि महासम्मेलन में (जिसमें सैकड़ों की संख्या में साधु-साध्वियों ने भाग लिया था) श्रमण-शिथिलाचार पर पहली बार गंभीर विचार-विमर्श हुआ तथा गहरी चिन्ता व्यक्त की गई। शिथिलाचार की रोकथाम के लिए कुछ निर्णय भी लिए गए पर इन निर्णयों का आजतक कार्यान्वयन नहीं हो पाया। इनमें एक महत्वपूर्ण निर्णय साधु-साध्वियों का एकल विहार निषेध था पर इसमें भी उलटें कुछ और बढ़ोतरी ही हुई है। निर्णय ठीक ही था क्योंकि मानवीय दुर्बलताओं के कारण ऐसे साधु-साध्वियों की चर्या में अनेक दोष चोरी छिपे घर कर लेते हैं। एकल विहारी साधु-साध्वी छोटे नगरों, कस्बों आदि में विहार करना विश्राम करना या चातुर्मास स्थापित करना सामान्यतया अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि अंध श्रद्धालु श्रावकगण उनके आदर सत्कार सम्मान में कोई कमी नहीं छोड़ते और यदि ये साधु महाराज कुछ प्रवचन कुशल हुए या मंत्र-तंत्र--यंत्र विद्या में कुछ दखल रखते हों तो उनके प्रभाव व जय-जयकार का कहना ही क्या। वैसे, हमारे देखने में एक एकल विहारी आचार्य श्री भी आए हैं जो एक वैतनिक सुमुखी संघ संचालिका के साथ ही विहार विश्राम करते थे। उनके कक्ष में दो-दो टेलीफोन रहते थे तथा एक अति व्यस्त व्यापारी के समान वे उन दोनों टेलीफोनों पर अपने श्रद्धालु भक्तों की समस्याओं का समाधान करने में निरन्तर व्यस्त रहते थे। (उन दिनो मोबाइल फोन्स का अधिक प्रचलन नहीं था)।

ऐसा नहीं है कि इन आचार्य श्री ने मुनि दीक्षाएं नहीं दी हैं, पर इनका कोई भी शिष्य इनके संघस्थ होकर नहीं रहता। उनकी असन्तुष्टि का कारण इनके साध्वाचार में विकृति है या हो सकता है कि वे भी अपने गुरुवर्य से प्रेरणा लेकर एकल विहार करना ही पसन्द करते हों। ये आचार्य श्री कुछ वर्ष पूर्व डीमापुर में चातुर्मासरत थे लेकिन वहाँ की जागरूक समाज द्वारा इनके संदिग्ध साध्वाचार का प्रबल विरोध किए जाने के कारण इन्हें चातुर्मास के बीच में ही अन्यत्र पलायन करना पड़ा था। लेकिन वे तब से पूर्वांचल के ही अन्य छोटे-बड़े नगरों में धर्म (या अपनी) प्रभावना करते विहार कर रहे हैं।

एक अति चिन्तनीय मामला अप्रैल १९९५ में प्रकाश में आया एक आचार्य के साध्वाचार पतन का। यह आचार्य सन्मतिसागर विद्याभूषण (सिंह शावकों से रथ खिंचवाने वाले) तथा उनकी परम शिष्या आर्यिका संयमभूषणमति जी का था। आचार्य श्री के संघस्थ

एक आर्यिका जी ने एक अन्य आर्यिका जी तथा एक ब्रह्मचारिणी के साथ किसी प्रकार सोनागिर में विराजित आचार्य श्री के संघ से पलायन करके आचार्य श्री द्वारा अपने दैहिक मानसिक यौन शोषण की करुण गाथा मुरैना की समाज को सुनाई तथा लिखकर भी दी कि किस प्रकार आचार्य ने दशलाक्षणी पर्व के दौरान छिंदवाड़ा मंदिर जी के प्रवचन कक्ष में १९९२ में उनके साथ पहली बार बलात्कार किया था तथा तबसे उनका यौन व मानसिक शोषण करते आ रहे हैं, गर्भपात भी करा चुके हैं तथा कुछ ब्रह्मचारिणी-क्षुल्लिका बहनों के साथ भी दुष्कर्म करते हैं। संयोगवश बड़ी संख्या में विद्वज्जन भी वहाँ उपस्थित थे जो गुरु गोपाल दास बरैया की जयंती मनाने के लिये वहाँ आए हुए थे। मुरैना की समाज ने गंभीर विचार विमर्श के बाद इन दिगम्बर मुनिवेशी आचार्य के बहिष्कार का निर्णय लिया तथा अनेक स्थानों की समाज को उसकी लिखित सूचना भी प्रेषित की।

समस्त दिगम्बर जैन समाज ने भी इस प्रकरण को उचित गंभीरता से लिया तथा समाज की तीनों अखिल भारतीय शीर्ष संस्थाओं-परिषद, महासमिति तथा महासभा के प्रमुखों की सहमति से जस्टिस जे. डी. जैन की अध्यक्षता में एक ५ सदस्यीय जांच समिति का गठन कर दिया गया। पूरी जांच पड़ताल के बाद जस्टिस जे. डी. जैन ने जांच समिति की ६३ पृष्ठीय रिपोर्ट दिनांक ८.८.९६ को समाज के तीनों प्रमुखों को सौंप दी। रिपोर्ट में आचार्य को शालीनता वश सीधे आरोप सिद्ध न कहकर अपने निष्कर्ष में लिखा था कि "सन्देह की सुई संघ के शीर्ष आचार्य सन्मतिसागर के विरुद्ध झुकती प्रतीत होती है"। ९ महीनों तक जब महासभा अध्यक्ष ने जांच रिपोर्ट पर अपनी सहमति नहीं दी तो परिषद व महासमिति के अध्यक्षों ने जांच समिति के निष्कर्ष को स्वीकार करते हुए एक संयुक्त वक्तव्य द्वारा आचार्य श्री सन्मतिसागरजी से अपेक्षा की कि उन्हें मुनि पद का त्याग कर दिगम्बर जैन आचार्यों के उच्चतम आदर्श का निर्वहन करना चाहिए तथा वर्तमान के तीन प्रमुख आचार्यों श्री विद्यानंद जी, श्री विद्यासागरजी तथा श्री वर्द्धमानसागरजी में से किसी एक के समक्ष प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिए। यह संयुक्त वक्तव्य जांच समिति के सार संक्षेप सहित महासमिति पत्रिका तथा अन्य कई धार्मिक पत्र-पत्रिकओं में प्रकाशित हुआ।

पर भला आचार्य सन्मतिसागर जी को दो समाज प्रमुखों का यह अनुरोधपूर्ण निर्णय क्यों स्वीकार्य होता जबकि महासभा (धर्म संरक्षिणी) व उसके अध्यक्ष जी उपगूहन अंग के रक्षार्थ उनके रक्षा कवच बने हुए थे। महासभा अध्यक्ष जी ने जस्टिस जे. डी. जैन समिति की जांच को दोषपूर्ण बताते हुए अपने एक निकटतम सहयोगी प्रमुख विद्वान के साथ स्वयं जांच करने की घोषणा की। उस जांच के परिणाम स्वरूप उन्होंने घोषित किया कि इस प्रकरण में उक्त आचार्य श्री निर्दोष हैं और चारित्र संबंधी जो दोष उनके विरुद्ध

लगाया गया है वह बिल्कुल ही असत्य है। उन्होंने यह भी कहा कि एकान्तवादी (कहानजी पंथी) बहुत अर्से से उन्हें बदनाम करने का प्रयास कर रहे थे और यह प्रकरण भी उसी की एक कड़ी है। जैन गजट में आचार्य श्री का गुणगान करते हुए तथा स्याद्वाद शिक्षण परिषद की स्थापना एवं धर्म शिक्षण शिविरों के आयोजनों में उनके महती योगदान के लिए उनका आभार प्रकट करते हुए लेख भी प्रकाशित किए गए। महासभा अध्यक्ष जी की उपरोक्त घोषणा के परिणाम स्वरूप आर्यिका संयमभूषणमती जी तो दीक्षा छेदकर गुमनामी में खो गईं जबकि आचार्य श्री अपनी जय जयकार कराते हुए अतिशय क्षेत्रों की करोड़ों की योजना बनाकर निर्माण कराने के लिए विपुल द्रव्य का संचय करते/दान कराते श्रद्धालु भक्तों से घिरे जगह-जगह विहार कर रहे हैं।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के सभी ११ गणधर तद्भव मोक्षगामी थे, जिनमें सुधर्मा स्वामी अन्तिम मोक्ष गये। पर अब ढाई हजार वर्ष बाद २०वीं सदी के अन्तिम चरण में गणधराचार्य कुंथुसागरजी के साथ गणधराचार्यों की एक नई खेप का अवतरण हुआ है। पता नहीं ये किस तीर्थंकर के आगमन की प्रतीक्षा में अभी से गणधराचार्य की पदवी धारण किए बैठे हैं क्योंकि इस भरत क्षेत्र में अगले तीर्थंकर तो आगामी उत्सर्पिणी महाकाल खंड के चौथे काल में ही जन्म लेंगे। गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी के विचित्र साध्वाचार की गाथा में 'धर्म मंगल' की जागरूक सम्पादिका जी अपनी पत्रिका के अनेक पन्ने रंग चुकी हैं। इनकी प्रमुख आर्यिका शिष्या इन्हें पापा जी कहती हैं तथा इनकी गोद में सर रख लेटी रहती हैं। उनके गर्भपात के किस्से भी सुनने में आए। इनके एक दीक्षित मुनि सूर्यसागर श्रद्धालु श्राविका युवतियों से कुत्सित इशारे करते, अपने प्रेम जाल में फंसाते पकड़े गए। उनके बैग को खोले जाने पर उसमें से अश्लील चित्र और मोबाइल, पिस्ता, बादाम, काजू तथा ४,५००/- रुपए मिले। युवा श्रावकों ने उनका सब सामान छीनकर उन्हें कपड़े पहना दिए। उनके बताने पर श्रावकगण उन्हें उनके गुरु जी के पास ले गए जिन्होंने पुनः उनके कपड़े उतरवाकर तथा कुछ मंत्रोच्चारण करके कहा कि हमने इन्हें पुनः मुनि दीक्षा दे दी है अब इन्हें नमस्कार करो। श्रावकगण दुखित, अपमानित होकर लौट आए। एक अन्य गणधराचार्य दो युवा श्राविकाओं के प्रेम जाल में ऐसे फंसे कि उन्होंने उनका सब रुपया पैसा लूट लिया और फिर आपस में जोर-जोर से झगड़ा किया। बात खुलने के डर से उन्हें बड़ी आत्म ग्लानि हुई और उन्होंने सल्फास आदि खाकर आत्महत्या का प्रयास किया। (सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण करने का उन्हें ध्यान ही नहीं आया।) अस्पताल में डाक्टरों के प्रयास से वे बच गए और अब कपड़े पहिनकर आनन्दपूर्वक अपनी नई गृहस्थी चला रहे हैं।

इस युग के एक अन्य महाप्रभावक आचार्य श्री ने जिनका चातुर्मास इस वर्ष (२००४) तीनमूर्ति मंदिर बोरिवली (मुम्बई) में सम्पन्न हुआ, चातुर्मास स्थापना के समय स्वयं अपने हाथ से श्रद्धालु श्रावकों को प्रसाद वितरण किया तथा बचे प्रसाद को अपनी अलमारी में बन्द करके रख लिया। 'संस्कार सागर' (सितम्बर २००४) में प्रकाशित उसके एक सुधी पाठक ने अपने पत्र में लिखा है कि बोरिवली से प्राप्त एक पैम्फ्लैट में दिगम्बर जैन आम्नाय में परम्परा से प्रचलित मंगल श्लोक के तृतीय चरण 'मंगलम् कुन्दकुन्दाद्यो" को बदलकर "मंगलम् पुष्पदंताद्यो" कर दिया गया है। उसे पढ़कर उन्हें लगा कि विवादास्पद चर्या के धारी ये आचार्य मंगल रूप माने जाने लगे तो मोबाइल, कूलर, ए. सी. आदि का उपभोग करने वाले सभी संत अपने को मंगल रूप घोषित करने लगेंगे।

इन आचार्य श्री के प्रायः सभी युवा मुनि शिष्य मध्यप्रदेश के धर्मनिष्ठ साधारण ग्रामीण परिवारों से आए हैं तथा १२-१३ वर्ष की प्रारंभिक किशोरावस्था में ही क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर आचार्य श्री के संघ में चले गए तथा उनकी सारे लौकिक-धार्मिक शिक्षा गुरुवर्य के चरणों में ही हुई है। इनमें से कुछ सजी संवरी मूंछ या फ्रैंच कट दाढ़ी भी रख कर अपनी मुख मुद्रा को विशेष भव्यता प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ कुशल एवं प्रभावी प्रवचनकार हैं तथा उनके चातुर्मास पर ही ४०-५० लाख रु. प्रतिवर्ष का व्यय समाज का हो जाता है। ये युवा संत बड़े सुनियोजित ढंग से भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य को एकान्तवादी घोषित करते हुए मंगल श्लोक के इस संशोधित रूप का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

आधुनिकता की हद हो गई जब एक मुनिराज ने बर्थ डे केक काटकर अपनी जन्म जयन्ती मनाई। अब एक दिगम्बर मुद्रा का परीषह सहने के अतिरिक्त अन्य किसी परिषह का सहन करने की आवश्यकता नहीं रह गई तथा उनके सुविधापूर्ण समाधान-हीटर, कूलर, ए.सी., निजी आहार व्यवस्था आदि के रूप में खोज लिए गए हैं। बढ़ती आबादी के कारण वन अब रह नहीं गए हैं। अतः वनों में जाकर सब प्रकार के परीषह सहते हुए देह सुखाने, उसका ममत्व नष्ट करने की गुंजाइश ही बहुत कम रह गई है। हाँ, उपवास का कुछ अभ्यास अवश्य आवश्यक है और अब तो सारी तपस्या उपवास तपस्या में ही सिमट कर रह गई है। दिगम्बर मुनि वेश तो धर्म गुरु के रूप में पूजे जाने, श्रावकों की श्रद्धा का पात्र बनने के लिए अनिवार्य है ही। फिर चाहे उनके श्रमणाचार में कितने ही दोष क्यों न हों, वे जानते हैं कि श्रावकों का उपगूहन अंग उनके सब दोष ढांकता रहेगा।

'मानतुंग पुष्प' (३ अक्टूबर, २००४) में एक एकल विहारी क्षुल्लक विनयसागर जी का लेख "एकल विहारियों का दर्द कौन सुनेगा" प्रकाशित हुआ है। क्षुल्लक जी लिखते

हैं कि "आजकल श्रमण संघों में अत्यन्त क्रूरतापूर्वक मानसिक शोषण किया जा रहा है। हम युवा लोग जिस वीतरागता से प्रभावित होकर संघों में प्रवेश करते हैं, कुछ महीनों वह वहां ढूढ़े-ढूढ़े नहीं मिलती। संघों में व्यापक लौकिकता और रागद्वेष के कारण वाली परेशानियां से रात दिन जूझना पड़े तो वह संघ छोड़ने के अलावा और कौन उपाय करेगा। वर्तमान में तो एकल विहारियों से ज्यादा सामाजिक प्रदूषण बड़े-बड़े संघों द्वारा फैलाए जा रहे हैं। मेरी दृष्टि में जितने एकल विहारी साधु हैं उनके द्वारा कभी इतना बड़ा काण्ड नहीं किया गया जो बड़े-बड़े समाचार पत्र-पत्रिकाओं की सुर्खियों में रहा हो-या पूरे देश की समाज के लिए महान् चिन्ता का विषय हो--आदि-आदि।"

हम इन क्षुल्लक श्री से केवल इतना पूछना चाहेंगे कि क्या इन्हें अपने आचार्य संघ में कोई भी ऐसा साधु नहीं मिला जो उनके समान ही आत्म कल्याण के लिए संघ छोड़कर इनके साथ चला आता। या पहिले जो साधु संघ छोड़ चुके, उनके साथ ये विहार क्यों नहीं करते। इन क्षुल्लक जी ने अपने गुरु का या चातुर्मास स्थान का नाम नहीं लिखा है तथा श्रमण संघों के विरुद्ध भी अस्पष्ट सांकेतिक शैली में ही आरोप लगाए हैं। यद्यपि इनके विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है तथापि 'संस्कार सागर' द्वारा प्रकाशित चातुर्मास रत साधुओं की सूची में एक एकल विहारी क्षुल्लक विनयसागर भी हैं जिनके गुरु आचार्य विरागसागर हैं। इन आचार्य श्री ने १०० से अधिक मुनि-आर्यिका दीक्षाएं दी हैं पर इनके अधिकांश शिष्य-शिष्यायें इनके संघस्थ होकर नहीं रहते। कुछ समय पूर्व इनके ही संघ से अलग हुए एक ब्र. इन्द्रकुमार पोटी जी ने इन पर आर्यिकाओं-क्षुल्लिकाओं आदि के साथ दैहिक, मानसिक, यौन शोषण आदि के घृणित आरोप के बड़े-बड़े पोस्टर प्रचारित किए थे। 'धर्म मंगल' की जागरूक सम्पादिका जी ने भी दावा किया था कि उनके पास शोषित साध्वियों आदि के एफिडेविट सहित लिखित बयान हैं।

उपर्युक्त आचार्यश्री ने एक नया इतिहास ही रच दिया जब रविवार दि. ७ नवम्बर २००४ को पूर्वाह्न ११.३० बजे टी. वी. के आज तक चैनल के 'जुर्म स्तम्भ' के अन्तर्गत "साधु या शैतान" शीर्षक से उनकी करतूतों का भंडाफोड़ किया जिसे देश के लाखों दर्शकों ने देखा होगा। आचार्य विरागसागर को दिखाते हुए कहा गया कि इन पर अपनी ही शिष्या आर्यिकाओं-क्षुल्लिकाओं के साथ यौन शोषण, भ्रूण हत्या आदि के घृणित आरोप लगाए जाते रहे हैं और अब भी लग रहे हैं। इन आचार्य के अतिरिक्त कुछ शोषित साध्वियों के भी चित्र दिखाए तथा संघ से भागकर हस्तिनापुर पहुँची एक शोषित साध्वी ने स्वयं भी अपनी व्यथा गाथा सुनाई। कदाचित् ही किसी अन्य आचार्य ने सम्पूर्ण देशवासियों के सम्मुख

दिगम्बर श्रमण संघ व समाज को इतना कलंकित किया होगा और ये आचार्य-कलंक अपनी कृति में अपना परिचय महावीर के अवतार स्वरूप देकर सर्वदोष रहित भगवान महावीर की छवि को भी कलंकित कर रहे हैं, जो अक्षम्य है।

'दिशाबोध' के धर्मनिष्ठ मुनि भक्त विद्वान सम्पादक के आगणन के अनुसार प्रत्येक दिगम्बर जैन संत/साध्वी पर समाज का औसतन व्यय रु. ५८,००० प्रतिमाह होता है। तथाकथित सम्पन्न जैन समाज में भी कुछ ही ऐसे अति सम्पन्न श्रेष्ठी परिवार होंगे जो अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य पर इतना भारी व्यय करते हो या करने में सक्षम हों। हम सभी धर्म गुरुओं को समाज पर भार तो नहीं कहेंगे। क्योंकि आज भी निर्दोष साध्वाचार के धारी पूर्ण अपरिग्रही या न्यूनतम परिग्रह के धारी संत/साध्वी संसार-देह के वैरागी मोक्ष मार्ग के साधक आध्यात्मिक विकास में लीन धर्म गुरु हमारे बीच मौजूद हैं। वे धार्मिक ग्रंथों के गूढ़ अर्थों की सरल व्याख्या प्रस्तुत कर जिनवाणी माता कीं सेवा कर रहे हैं तथा अपने प्रवचनों में करुणा-जीवदया, शाकाहार तथा नैतिक आचरण को ही धर्माचरण की संज्ञा देते हुए जैन धर्म की महती प्रभावना कर रहे हैं। वे समाज पर भार नहीं, वरन् जितना लेते हैं उससे कहीं अधिक उपकार कर रहे हैं। उनका आहार-पान भी इतना सरल, सात्विक और अल्प है कि श्रावक उनको आहार देकर अपने को महान पुण्यशाली मानता है। ऐसे धर्म गुरुओं को पाकर कोई भी धर्म-समाज अपने को गौरवान्वित महसूस करेगा।

आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव द्वारा तीसरे काल के ही अन्तिम चरण में प्रवर्तित इस कर्मभूमि में प्रत्येक नर-नारी का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज पर भार न बने, जीवन में संघर्ष कर नैतिक आचरण से जीविकोपार्जन करे तथा समाज से जितना ले उससे अधिक उसका उपकार करे, प्रतिफल दे।

यह भी एक कटु सत्य है कि आज हमारे अनेक तथाकथित धर्मगुरुओं (आचार्यों, मुनियों, साध्वियों) ने समाज की धार्मिक भावनाओं का दोहन करके धर्म को अपनी पूजा, यश, कीर्ति ही नहीं, अटूट धन अर्जन का भी साधन बना लिया है। इनमें अधिकांश की लौकिक शिक्षा आदि इतनी कम है कि यदि वे इस कर्मभूमि की घोर संघर्षमय परिस्थितियों में जीवनोपार्जन करते तो अत्यन्त साधारण जीवनयापन करने के लिए विवश होते। आचार्य श्री विद्यासागरजी ने जिस प्रकार अपने कतिपय उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त बाल ब्रह्मचारी शिष्यों को मुनि दीक्षा देकर कर्मभूमि के संघर्षमय जीवन से मुक्त कर दिया, उसे भी एक दृष्टि से इन नवदीक्षित मुनियों द्वारा अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति

किये बिना जीवन संघर्ष से पलायन करना ही कहा जाएगा। इन्हें उच्च तकनीकी शिक्षा दिलाने पर उनके परिवार को तो भारी व्यय करना ही पड़ा होगा, साथ ही देश की सरकार (जनता) का उससे भी कहीं अधिक व्यय प्रत्येक छात्र की शिक्षा पर हुआ होगा जिसका कोई प्रतिफल इन नवदीक्षित मुनियों ने परिवार व समाज को नहीं दिया। उल्टे अपने भरण-पोषण के लिए वे समाज पर भार हो गए। उनकी इस उच्च तकनीकी शिक्षा का उनकी आध्यात्मिक विकास की यात्रा में भी कोई उपयोग होने की संभावना नहीं लगती। अतः यह व्यर्थ ही रही।

ऐसा लगता है कि दिगम्बर मुनि वेशियों के प्रति श्रावकों की विशेष श्रद्धा सम्मान का अनुचित लाभ उठाने के लिए या श्रमण संघ को बदनाम करने के लिए कुछ धूर्त व्यक्ति दिगम्बर मुनिवेश धारण कर श्रमण संघ में घुस गए हैं। ऐसे ही एक स्वयंभू मुनिराज कुछ वर्ष पूर्व श्री मन्दिर जी से चांदी के उपकरण चुराते पकड़े गए थे। इस वर्ष पुनः वे दूसरा नाम धर के चरस की तस्करी करते पकड़े गए हैं। और समाज धूर्तों और अनाचारियों के विरुद्ध भी कोई ठोस कदम नहीं उठा पाती, अन्य शिथिलाचारियों, परिग्रहधारी तथाकथित अपरिग्रहियों के विरुद्ध कार्यवाही का तो प्रश्न ही नहीं।

हमारी समझ में दिगम्बर जैन समाज एवं दिगम्बर जैन श्रमण संघ की वर्तमान शोचनीय स्थिति का मुख्य कारण समाज में शीर्ष नेतृत्व का अभाव है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा उद्योग व्यापार जगत के शीर्ष स्थानों पर रहे व बरसों भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के अध्यक्ष व भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबंध न्यासी रहे, पत्रकार-सम्पादक साहू रमेशचंद जी डी. लिट्. समाज के उदार दृष्टिकोण वाले ऐसे शीर्ष व्यक्ति थे, जो यदि अनुरोध किया जाता तो कदाचित् समाज को सशक्त शीर्ष नेतृत्व प्रदान कर सकते थे, पर विगत २२ सितम्बर को उनके आकस्मिक स्वर्गवास के बाद अब समाज में कोई ऐसा शीर्ष व्यक्तित्व (Towering Personalty) का पुरुष नहीं रह गया।

सन् १९९५ में आ. सन्मतिसागर-संयम भूषण प्रकरण में समाज की तीनों अखिल भारतीय संस्थाओं में से दो के बहुमत के संयुक्त वक्तव्य से जो निर्णय प्रकाशित-प्रसारित किया गया था, वह सम्पूर्ण देश की समाज को सर्वमान्य होता पर साहू साहब किसी की भी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाना नहीं चाहते थे। अतः धर्म संरक्षिणी महासभा के पुनः जांच नाटक में वे चुप रहे।

समाज में सशक्त शीर्ष नेतृत्व के अभाव में श्रमण शिथिलाचार में तथा धर्म समाज में पैदा हो रही विकृतियों में कोई सारभूत कमी लाना सशक्त नेतृत्व के अभाव में संभव

नहीं है। धर्म समाज को सशक्त नेतृत्व प्रदान करने का, हमारी समझ में, बस एक ही उपाय है कि तीनों अखिल धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं-महासमिति, परिषद तथा महासभा के अध्यक्षों की समिति पूर्ण मत से या उसके अभाव में दो के बहुमत से जो निर्णय प्रसारित करें वह सम्पूर्ण समाज को अन्तिम रूप से सर्वमान्य हो। हम इन तीनों संस्थाओं के अध्यक्षों के साथ भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष को भी जोड़ना चाहेंगे क्योंकि आज अनेक नए अतिशय क्षेत्रों के सृजन व निर्माण के नाम पर करोड़ों रुपए बहाए जा रहे हैं जिसका कोई विधिवत हिसाब भी नहीं रखा जाता न ही प्रकाशित किया जाता, जबकि तीर्थंकरों के कल्याणकों से जुड़े प्राचीन तीर्थक्षेत्रों का उनकी गरिमा के अनुसार आजतक विकास नहीं हो पाया। यदि किसी समस्या पर पूर्ण मत या बहुमत न बन पाए तो प्रत्येक तीन माह के अन्तराल पर उस समस्या पर पुनर्विचार कर पूर्ण मत या बहुमत प्राप्ति का प्रयास किया जाना चाहिए। अनाचारियों व धूर्तों के विरुद्ध देश के कानून के अन्तर्गत कड़ी से कड़ी कानूनी कार्यवाही करवानी चाहिए।

आज ढाई हजार वर्ष के मूलाचार में श्रमणं चर्या के लिए निर्धारित कतिपय नियम अव्यवहारिक हो गए हैं, या समयानुकूल नहीं रह गए हैं। आज की परिस्थितियों के अनुसार श्रमणाचार संहिता में निर्दोष चर्या के धनी कतिपय वरिष्ठ आचार्यों/मुनियों के परामर्श सहयोग से नई आचार संहिता का निर्माण किया जाना आवश्यक है तथा गृहत्यागी साधुओं से उसका कड़ाई से पालन कराया जाय। हमारे अपने मत में क्षुल्लक एवं ऐलक वेश में भी आध्यात्मिक विकास के साथ ही समाजसेवा की पूर्ण गुंजाइश है और मुनि दीक्षा तो बहुत ही विरल उनको जिन्हें क्षुल्लक, ऐलक अवस्था में रहते-रहते संसार व देह से पूर्ण वैराग्य हो जाय, दी जानी चाहिए।

इसी प्रकार श्रावकाचार की भी समयानुकूल संहिता तैयार की जानी आवश्यक हो गई है जिसमें सभी प्रकार के अनैतिक व्यापार को कर्मादान घोषित कर दिया जाय तथा कर चोरी को अचौर्य व्रत के अतिचार में गिना जाय तथा नैतिक आचरण को ही धर्माचरण माना जाय। इसका पालन करने पर ही जैन समाज अपनी खोई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर सकेगा। हमारे विद्वज्जनों को भी शास्त्र प्रवचन व भाषणों के द्वारा श्रावकों को उपगूहन अंग के महत्व एवं उसके सही उपयोग के विषय में समाज को समझा कर शिक्षित करना चाहिए।

- अजित प्रसाद जैन

मथुरा से प्राप्त सं. २९९ का अभिलेख

- डॉ० शशि कान्त

मथुरा के पुरावशेषों में ५ पंक्तियों का एक अभिलेख प्राप्त हुआ था जिसको जार्ज ब्यूहलर ने १८९६ के रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के पृष्ठ ५७८-८१ पर प्रकाशित किया था। यह अभिलेख ब्राह्मी लिपि में है और इसका पाठ निम्नवत है:-

१. नमस्सर्वसिद्धाना अरहन्ताना। महाराजस्य राजातिराजस्य संवछर शते द (तिये नव नवत्याधिके)

२. २०० ९० ९ हेमन्तमासे २ दिवसे १ आरहातो महावीरस्य प्रातिमा

३.-- स्य ओखारिकाये धितु उज्झतिकाये च ओखाये श्राविका भगिनियो (।)--

४. --- शरिकस्य शिवदिनास्य च एतैः आराहातायताने स्थापित (।)

५. -- देवकुलं च

ऊपर कोष्ठकों में भग्नांशों के पुनर्स्थापित पाठ हैं।

अभिलेख का हिन्दी रूपान्तर निम्नवत होगा:-

"सब सिद्धों और अरहंतों को नमस्कार। हेमन्त ऋतु के दूसरे मास के प्रथम दिन, महाराज राजातिराज के संवत्सर २९९ में, अर्हंतों के इस मन्दिर में अरहंत महावीर की प्रतिमा की स्थापना ओखारिका की पुत्रियों उज्झतिका और ओखा, जो शरिक और शिवदिना की श्राविका भगिनियां हैं, द्वारा की गई।--और देवकुल।"

इस अभिलेख से कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आते हैं। यद्यपि मथुरा प्रदेश से कुषाणों का राज्य समाप्त हुए २०० वर्ष से भी अधिक हो गये थे और यह प्रदेश गुप्त साम्राज्य का अंग था, यहाँ कुषाण कालगणना का ही प्रचलन रहा प्रतीत होता है। कुषाण राजाओं की उपाधि 'महाराज राजातिराज' थी। उपाधि के साथ किसी व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं है अतः यह केवल उस संवत् का सूचक है जो कुषाण राजाओं द्वारा प्रवर्तित किया गया था। यह संवत् ७८ ई. में प्रारम्भ हुआ था। तदनुसार इस अभिलेख का समय ईस्वी सन् ३७७ सूचित होता है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य नमस्कार मन्त्र के स्वरूप के सम्बन्ध में है। इसमें केवल सिद्धों और अरहंतों को नमस्कार किया गया है। खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में भी केवल अरहंतों और सिद्धों को नमस्कार किया गया है। उसमें पाठ है : "नमो अरहंतानं नमो सवसिधानं" जबकि प्रस्तुत अभिलेख में पाठ है : "नमस्सर्वसिद्धाना

अरहन्ताना"। दोनों ही अभिलेखों में यह मंगलवाक्य लेख के प्रारम्भ में है जो इस बात का सूचक है कि इसका मांगलिक रूप में प्रयोग किया गया है। खारवेल का शिलालेख लगभग १७२ ईस्वी पूर्व का है और मथुरा का प्रस्तुत अभिलेख ३७७ ईस्वी का है। इससे यह सूचित होता है कि चौथी शताब्दी ईस्वी तक, अर्थात् महावीर निर्वाण के लगभग ६०० वर्ष बाद तक, णमोकार (नमोकार, नमस्कार) मन्त्र में केवल अरहंतों और सिद्धों को नमस्कार की परम्परा रही, यद्यपि इसमें यह बाध्यता नहीं रही कि पहले अरहंतों को नमस्कार किया जाय अथवा सिद्धों को। इससे यह सूचित होता है कि नमस्कार मन्त्र में आचार्य, उपाध्याय और साधु को, जैसा कि वर्तमान में प्रचलित मन्त्र में है, चौथी शताब्दी ईस्वी के बाद सम्मिलित किया गया। यह ध्यातव्य है कि उपलब्ध साहित्यिक उल्लेखों की जो प्रतियां अब उपलब्ध हैं वे चौथी शती ईस्वी के बाद की हैं। शिलालेखीय प्रमाण में कोई परिवर्तन किया जाना संभव नहीं है, अतः उसे अधिक विश्वसनीय माना जाना चाहिये।

मथुरा के प्रस्तुत अभिलेख से यह भी विदित होता है कि जैन मंदिर के लिये 'अरहतायतन' शब्द का प्रयोग होता था। 'देवकुल' शब्द से ऐसा भासित होता है कि उस समय तक जैनों में तीर्थंकरों के अतिरिक्त कुछ अन्य देवी-देवताओं की मान्यता भी प्रचलित हो गई थी और उन देवी-देवताओं की मूर्तियों की स्थापना 'देवकुल' के नाम से की जाने लगी थी।

प्रतिमा स्थापित कराने वाली श्राविकाओं उज्झतिका और ओखा तथा उनकी माता ओखारिका के नाम कुछ विचित्र से लगते हैं। कदाचित् ये देशज नाम हैं।

- ज्योति निकुंज,
चारबाग, लखनऊ-२२६००४

पार्श्वनाथ-स्तवन

आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन संस्तवस्ते, नामापि पाति भवता भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोहत-पान्थ जनान्निदाघे, प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि।।७।।

- कुमुदचन्द्र कृत कल्याण मन्दिर स्तोत्र

भावार्थ- हे जिन! आपके स्तवन की महिमा तो अचिन्त्य है, अतः वह तो दूर रहे, आपका तो नाम भी जीवों को संसार से बचा लेता है। ठीक ही है, ग्रीष्म ऋतु में तीखे घाम से पीड़ित बटोहियों को कमलों के सरोवर की सरस वायु भी प्रसन्न कर लेती है।

नौवे दशक की ओर : श्री अजित प्रसाद जैन

लेखक- श्री सुरेश जैन 'सरल'

जब कोई लेखक किसी सम्पादक का परिचय लिखता है तो ईर्ष्यालु-विद्वान्! उस कार्य को 'चापलूसी' की संज्ञा देकर उसे अनदेखा कर देते हैं, मगर समताधारी-जन उसे कलम का 'कर्तव्य' घोषित कर सुखी होते हैं, आनंद मनाते हैं।

ईर्ष्या और आनंद के दोलन से परे, यह लेखन एक व्रत की तरह मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ, इसलिये लिख रहा हूँ। कोई क्या कहेगा; चिंता नहीं की। जो उचित हो; आगम की गोद से उद्भूत हो, उस कर्तव्य को करने में क्या हिचक ?

एक जनवरी सन् १९१८ ई. को मेरठ में जन्मे श्री अजित प्रसाद जी जैन से ६ अगस्त, १९४२ में (जबलपुर में) जन्मे सुरेश सरल का क्या परिचय हो सकता है? भूगोल की दूरी और उम्र का अंतर भी कम नहीं है ! जबलपुर से मेरठ एक हजार कि.मी. से अधिक दूर है, उम्र में भी कोई समानता नहीं, वे २४ वर्ष बड़े हैं। न मैंने उन्हें देखा; न उन्होंने मुझे। फिर भी यह परिचय लिखा जा रहा है, कारण है उनका कार्य। लेखन-कार्य, सम्पादन-कार्य, और सामाजिक-क्षेत्रों की सेवा का कार्य। परिचय लिखते समय व्यक्ति सामने नहीं आया; कार्य आया। अतः हुआ इस शब्दचित्र का जन्म।

शस्त्रधारी सिकंदर के समय से लेकर निःशस्त्र महात्मा गांधी तक का इतिहास पढ़ने-जानने वाले श्री अजित प्रसाद जी संसार के किसी व्यक्ति/मानव से प्रभावित नहीं हैं; वे भगवान महावीर से प्रभावित हैं। ऐसे व्यक्ति को समग्र जैनाजैन समुदाय जाने-समझे; यह है मेरी भावना।

श्री जैन साहब को किशोरावस्था से ही उत्तम पुस्तकें पढ़ने की तीव्र लगन रही है; उनका पुस्तकों/ज्ञान के प्रति समर्पण देखकर गृह सदस्य उन्हें 'पोथी व्यसनी' कहकर विनोद करते थे। वही किशोर, आज समाज के सर्वाधिक वयोवृद्ध सम्पादक हैं जो हाल ही में अपनी 'अंतिम अभिलाषा' लिखते समय स्पष्ट करते हैं कि 'मैंने धर्म और समाज से बहुत कुछ सीखा और पाया है, उनके उपकार से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। जिनेन्द्र देव का ध्यान करते हुए मुझमें इतनी शक्ति बनी रहे कि

अंतिम श्वांस तक धर्म और समाज की सेवा करता रह सकूँ। मेरे किसी सुकृत्य के फलस्वरूप यदि मरणोपरांत पुनः मनुष्य-पर्याय प्राप्त हो तो मेरा जन्म जैन-धर्म के आलोक में; जैन-समाज में ही हो।'

ऐसे साधर्मी के प्रति करुणा-प्रेम ही नहीं; आदर हो आना धर्म की निशानी है। यद्यपि मेरा उनसे मतैक्य नहीं है; मन, धर्म और गुणों में ऐक्य पाया जा सकता है।

श्री जैन का हृदय रोग काफी पुराना है। पहला हार्टअटैक उन्हे दिसम्बर १९९८ में मेरठ में पड़ा था जहां वे अपने परिजनों से मिलने गए हुए थे। एंजियोग्राफी करने के बाद डॉक्टरों ने एक मास के भीतर बाइपास सर्जरी कराने की सलाह दी थी। जो उन्होंने नहीं कराई। ३ दिसम्बर २००३ को दूसरे तथा २९ दिसम्बर २००३ को ही तीसरे 'हार्ट-अटेक' ने उनके पुद्गल को छू लिया था; तब से उसे वह देह-तत्व इतना प्यारा लगा कि पुनः ५ अप्रैल, २००४ को और फिर २९ अप्रैल, २००४ को भी छूने/छेड़ने आया, मगर दर्शन कर लौट गया। पिछले चारों अटैकों में निजी हार्ट हास्पिटल का जिसमें इलाज कराया गया, एक ही निदान था- Left Ventricle Failure with massive cardiac arrest. तब लगा कि जिस बुद्धिजीवी का अपना दर्शन जीवित हो, उसे हार्टअटेक रूपी मृत्यु के प्रहार चाहे समाप्त कर दें, पर विचलित नहीं कर सकते। ८६ वर्ष की उम्र; जर्जर काया, पाँच अटैकों के आघात, चश्मे के स्थान पर माइक्रोस्कोपिक-लेन्स के सहारे, दिन में कुछ समय ही सही; अनिवार्य रूप से लिखना, पढ़ना और सम्पादन-कर्म से दो-चार होना। सच; प्रशस्त-पथ का राही है यह बुजुर्ग हमारे बीच।

१ जनवरी, १९१८ को मेरठ शहर में धार्मिक आत्मन श्री (स्व.) पारसदास जैन (अग्रवाल) के परिवार मे उनकी सद्गृहणी श्रीमती रामकटोरी देवी की पावन कुक्षि से चि. अजित का जन्म हुआ था। अठारह वर्ष की उम्र में बी.ए. उत्तीर्ण करते ही, फैडरल लोक सेवा आयोग में चयन हो गया। फलतः युवक श्री अजित प्रसाद सेना मुख्यालय शिमला में राजकीय सेवा में प्रवेश कर गये। फिर उ.प्र. लोक सेवा आयोग का सामना किया और वरिष्ठ सहायक के रूप में उ.प्र. सचिवालय में पहुंच गये। पुरुषार्थी प्रगति करते हैं; इस धारणा को सार्थक कर उन्होंने अनेक पदोन्नतियों का वरण किया-उपसचिव, वित्तीय-सलाहकार, आदि।

स्वतंत्र भारत में जब १९४७ में श्री चौधरी चरणसिंह की अध्यक्षता में देशी चिकित्सा पद्धति की प्रगति हेतु समिति गठित की गई थी, तब श्री जैन को सहसचिव का महत्वपूर्ण पद देकर उनकी कार्यशैली को बहुमान दिया गया था। पुनः कार्य

योग्यता और क्षमता देखते हुए 'आयुर्वेद-यूनानी महाविद्यालयों के पुनर्गठन' समिति के (सन् १९४९ में) सचिव बनाये गये।

१९५० में 'प्रादेशिक आयुर्वेदिक-यूनानी-अकादमी' की स्थापना की गई तब श्री जैन को स-गौरव 'मानद सचिव' बनाया गया। उसी वर्ष उन्होंने अपने अधिकारों का सुंदर उपयोग करते हुए 'वृहद् आयुर्वेदिक-यूनानी- पुस्तकालय' का बीजारोपण किया।

धीरे-धीरे वे सेवाओं की अवधि पूर्ण कर सन् १९७६ में सेवानिवृत्त हो गये, पर राज्य सरकार ने उन्हें वृद्ध नहीं माना; फलतः उ.प्र. संस्कृत अकादमी की स्थापना के समय, सन् १९७७ में उन्हें मानद-कोषाध्यक्ष-सदस्य नियुक्त किया गया। ये तो हुई कर्मक्षेत्र की उपलब्धियां; चलें उनके अन्य-क्षेत्रों पर भी दृष्टिपात करें।

श्री जैन को अपने अग्रज सुविख्यात विद्वान डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन की संगति प्रारंभ से ही उपलब्ध थी, अतः धर्म, समाज, साहित्य के प्रति समर्पण और सेवा की रुचि अपने आप मन में आ गई, फलतः १९३७ में, जैन सभा शिमला के अन्तर्गत 'जैन-पुस्तकालय' की स्थापना कराई। फिर 'जैन मिलन लखनऊ' की स्थापना और उसमें सदस्य से लेकर संरक्षक तक के पदों पर शोभा बिखराई। उनकी क्षमताओं से समाज अच्छी तरह परिचित था अतः उन्हें अनेक संस्थाओं ने पुकारा, फलतः जैन शिक्षा संस्थान लखनऊ, अग्रवाल शिक्षा संस्था तथा अग्रवाल सभा लखनऊ आदि में दशकों तक सक्रिय रहे वरिष्ठ पदों पर। सन् १९७४ में भ. महावीर स्वामी निर्वाण महोत्सव समिति में उ. प्र. सरकार ने उन्हें मानद-उपसचिव मनोनीत किया। उसकी फलश्रुति यह हुई कि सन् १९७६ में उसकी उत्तराधिकारी संस्था के रूप में समग्र जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र'. (रजि.), का गठन कराया गया जिसके माध्यम से असमर्थ किन्तु धर्मनिष्ठ मेधावी छात्रों की अध्ययन सहायता शुरू की गई और महावीर जनकल्याण निधि की स्थापना कर उसके माध्यम से समाज की असहाय महिलाओं और वृद्धों को वस्त्र-चिकित्सा आदि के लिए सहयोग दिया जाता है तथा श्रुत पंचमी १९७६ को धर्म, दर्शन, संस्कृति के एक सार्वजनिक शोध पुस्तकालय की स्थापना जैन धर्मशाला चारबाग, लखनऊ में की जिसने अब वृहद् आकार ग्रहण कर लिया है। यह पुस्तकालय शोध छात्रों तथा स्थानीय जैनाजैन जनता में बहुत लोकप्रिय है। श्री अजित प्रसाद जी उक्त समिति के महामंत्री के रूप में समिति की सभी प्रवृतियों का संचालन अपने सहयोगियों के साथ सुचारू रूप से करते चले आ रहे हैं।

सन् १९८६ में चातुर्मासिक शोध पत्रिका ''शोधादर्श' का जन्म हुआ जिसके आद्य प्रधान सम्पादक थे इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन विद्यावारिधि। कालान्तर में

(वर्ष १९९६ से) अपने दार्शनिक-पक्ष के कारण श्री अजितप्रसाद जी ने वह गुरूतर भार भी सम्भाला; जो आज भी उनके ऊपर है।

यूं श्री जैन का लेखन १९३५ से प्रकाश में आया और चर्चित हुआ था, जिसमें लेख 'कविवर वृन्दावन का काव्य सौष्ठव' विशेष है। लेखन के साथ प्रकाशन, सम्पादन कार्य भी रुचि में था अतः सन् १९७६ में ४५० पृष्ठीय 'भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ' वे सामने लाये। सन् १९८१ से १९८८ तक साप्ताहिक जैन गज़ट के प्रकाशक व समाचार-सम्पादक रहे, इस बीच वे 'शोधादर्श' के प्रबंध-सम्पादक भी थे। अब तो वे 'शोधादर्श' के साथ-साथ पाक्षिक 'समन्वयवाणी' (जयपुर) के प्रधान सम्पादक भी हैं। उनकी समिति की विभिन्न प्रवृत्तियों का वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट फर्म द्वारा आडिटेड एकाउन्ट सहित नियमित रूप से 'शोधादर्श' में प्रकाशित किया जाता है।

सन् १९७७ में समाज शिरोमणि साहू शांति प्रसाद जी की प्रेरणा से उत्तर प्रदेश के तीर्थक्षेत्रों के समुचित विकास और उनकी प्रबंध व्यवस्था में समुचित सुधार लाने के प्रयोजन से उत्तर प्रदेश (अब उत्तरांचल) दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी का गठन किया गया जिसमें भी श्री जैन ने प्रमुख भूमिका निभाई तथा कमेटी के संयुक्त महामंत्री के रूप में प्रारंभ के ११-१२ वर्षों तक न केवल उसके केन्द्रीय कार्यालय की व्यवस्था संभाली, वरन् कमेटी के प्रायः सभी कार्यों का निर्वहन किया।

सन् १९३५ से २००४ तक (लगभग ७० वर्ष तक) जो लेखन, सम्पादन और प्रकाशन पर समय देते रहे हों; उनके अनुभव अवश्य ही समाज और नवीन पीढ़ी के लिए प्रेरक सिद्ध होंगे।

समाज के सुधी-कार्यकर्तागण पीछे नहीं रहे; उन्होंने समय-समय पर; अनेक बार श्री जैन का अभिनंदन तो किया ही; पुरस्कृत भी किया; जिनमें १९९९ में आचार्य विमलसागर (भिण्ड) श्रुत संवर्धन पुरस्कार एवं सन् २००३ में अहिंसा इंटरनेशनल के श्री प्रेमचंद जैन-पत्रकारिता-पुरस्कार उल्लेखनीय हैं। दोनों से सम्बद्ध लोग, राष्ट्रीय-स्तर पर विश्वास बना चुके हैं।

अब देखें आत्म विश्वास वयोवृद्ध पत्रकार श्री अजितप्रसाद जी का, जिन्हें जीवन की सांध्य-बेला में छोड़कर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती धनवती सन् १९९३ में सिधार चुकी हैं; पर वे अपनी लेखनी को साथ चलते पा रहे हैं। उनके दोनों पुत्रों-श्री सूर्यकान्त जी एवं श्री मणिकान्त जी ने भी क्रमशः सन् २००२ एवं २००० से उनसे

मुंह मोड़ लिया और स्वर्गवासी हो गये; पर श्री जैन पत्र-पत्रिकाओं के पन्नों में उन्हें प्राप्त कर शांति पा रहे हैं। इतना ही नहीं; हृदयरोग, मधुमेह, दृष्टिमंदता एवं श्रवण-मंदता मिलकर उन्हें लाचार बना देने को तुले हैं; पर श्री जैन हैं कि उनके व्यूह में बंध कर भी; अपनी चर्या और रुचि को जीवित रखे हुए हैं।

उनकी प्रशंसा/आदरांजलि/सराहना के लिये साहित्य के समस्त चलतू विशेषण उपयोग में लाये जा सकते हैं; पर उन सबसे उनका परिचय पूर्ण नहीं होता। आप कौन सा विशेषण खोज सकते हैं, खोजें; मुझे भी बतलायें। पुराने शब्द – निर्भीक पत्रकार, शब्द-साधक, विचारक, साहित्य-व्यसनी आदि लिखने का कष्ट न करें; लायें कोई ताजा स्वर।

श्री जैन का ताजा स्वर सुनना चाहें तो ध्यान दें; वे कहते हैं - उक्त चार तकलीफों के साथ-साथ, याददाश्त भी कम हो चली है, इंद्रियां अवकाश चाह रही हैं; पर यह देह-तत्व उन्हें छुट्टी नहीं दे पा रहा है। अच्छा होता कि देह ही छुट्टी पर चला जाये ताकि आत्मा छूटकर अपने तय स्थान की राह पकड़ सके।

उनके ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्री सूर्यकान्त के एकमात्र सुपुत्र चि. दीपक साथ में हैं पर वे अपने व्यापार में बहुत व्यस्त रहते हैं। कनिष्ठ पुत्र स्व. श्री मणिकान्त के ज्येष्ठ पुत्र कैप्टेन मनीष जैन देश की सेना में अधिकारी हैं और आजकल पूर्वोत्तर सीमा की फील्ड ड्यूटी पर तैनात हैं; दूसरे पुत्र चि. पीयूष साथ हैं और कनिष्ठ पुत्र चि. मयंक इंजीनियरिंग में अध्ययनरत हैं। श्री जैन की दो बेटियां और दामाद हैं-एक यू.पी. में ही, दूसरे अमेरिका में। वे जब-तब मिलने आते हैं, यदाकदा फोन भी कर लेते हैं।

जैन धर्म का कथन निराला है 'आदमी सुखों के मध्य भी सुखी नहीं रह पाता किन्तु कभी-कभी दुखों के नीचे दबकर भी अपने को दुखी नहीं बनाता, छात्रता जीवित रखता है।' मुझे तो आदरणीय जैन साहब में छात्रता (क्षत्रियपन) के दर्शन ही हो रहे हैं; वे वय से संघर्षरत है और उनका आत्मपखेरू स्वतंत्र होना चाहता है। (उनके रथ के पहियों के स्थान पर डॉ. शशिकान्त जी एवं श्री रमाकान्त जी हैं; उनके पारिवारिक जन हैं; अतः श्री जैन की यात्रा सही दिशा में है; वे मृत्यु को सहज ही अभिनंदन नहीं करने देंगे; उसे समाधिमरण के सिंहपौर पर कुछ समय तक खड़ा रखेंगे)।

- २६३, गढ़ाफाटक, जबलपुर (म. प्र.)

आओ कुछ ऐसा करें

ग़म से भरी आँखों को
खुशियों से छलकाएं
आओ कुछ ऐसा करें....
हर चेहरे पर मुस्कान खिलाएं।।१।।

निराशा की गर्मी को
आशा की ठंडक से भुलाएं
आओ कुछ ऐसा करें....
तपती धूप में भी ठंडी हवाएं चलाएं।।२।।

उदासी के काले आसमान को
हंसी के तारों से झिलमिलाएं
आओ कुछ ऐसा करें.....
अमावस में भी चाँद चमकाएं।।३।।

वक्त के मुरझाए फूलों को
उम्मीद की खुशबू से महकाएं
आओ कुछ ऐसा करें.....
ख़िज़ा में भी बहार लाएं।।४।।

आँसुओं के सावन में
यादों की रिमझिम में भीग जाएं
आओ कुछ ऐसा करें.....
बिन बादल बरखा बरसाएं।।५।।

तन्हाई के समन्दर में
प्यार की लहरें उठाएं
आओ कुछ ऐसा करें.....
सूखी रेत पर भी आशियां बनाएं।।६।।।

- सौ. पूजा जैन, पारस सदन,
आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

नेमिनाथ-स्तवन

यशसा धवलीकृतजन्मपवित्रितभारतवर्षं महाहरिवंश-
महोदयशैलशिखामणिबालदिवाकरदीप्तिजितार्कवपुः।
वपुषाधिककान्तिभृताजितपूर्णशशाङ्क, विभो! हरिनीलमणि-
द्युतिमण्डलमण्डितदिङ्मुखमण्डल नेमिजिनेन्द्रं! नमो भवते।।३।।

-जिनसेन पुन्नाट कृत हरिवंशपुराण, सर्ग ३६

भावार्थ - हे नाथ! आपने यश से शुक्लीकृत जन्म से सारे भारतवर्ष को पवित्र किया है। अत्यन्त श्रेष्ठ हरिवंश रूप विशाल उदयाचल के शिखामणि स्वरूप बाल दिनकर जैसी कान्ति से आपने सूर्य के शरीर को जीत लिया है। हे विभो! आपने अधिक कान्ति को धारण करने वाले शरीर के द्वारा पूर्णचन्द्र को जीत लिया है एवं इन्द्रनील मणि जैसी कान्ति के समूह से आपने समस्त दिशाओं के मुखमण्डल को सुशोभित कर दिया है। अतः नेमि जिनेन्द्र! आपको नमस्कार है।

देखो सूरज आया द्वारे

अब तक सोये मोह-नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।
अंधकार में देख न पाये,
अज्ञ थपेड़े अब तक खाये,
आँख मींजते दिखा उजाला, बरबस दोनों हाथ पसारे।
अब तक सोये मोह नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।। १।।

छिपकर अनगिन पाप किये हैं,
विवश विषैले घूँट पिये हैं,
नहीं हुए निष्पाप अंत तक, किये कीर्तन सांझ-सकारे।
अब तक सोये मोह-नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।।२।।

भव-सागर में रहा डोलता,
कर्म-बंध को रहा खोलता,
समझ न पाये समय-सारिणी, सारे अवसर व्यर्थ विसारे।
अब तक सोये मोह-नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।।३।।

व्यसन विकारों ने आ घेरा,
उबर न पाया घिरा घनेरा,
बाह्य विकर्षन की गफलत में, संयम की चौखट पर हारे।
अब तक सोये मोह-नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।।४।।

छुटी न मिथ्या मदिर क्षन भर,
थाम न पाया सत्य निरन्तर,
ममता के आगे समता का, कभी नहीं सन्देश सुना रे।
अब तक सोये मोह-नींद में, देखो सूरज आया द्वारे।।५।।

- विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
- मंगल कलश, सर्वोदय नगर,
अलीगढ़- २०२००१

शोध सारांश-

वेदव्यास एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराणों का तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ. (कु.) नीलम जैन

(लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग में पी-एच.डी. हेतु स्वीकृत शोधप्रबंध जिसका प्रणयन प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र के निर्देशन में किया गया।)

भारतीय साहित्य में पुराण अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। पुराण भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड या आधारपीठ हैं। भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिये पुराणों का अध्ययन आवश्यक है। वेदव्यास एवं जिनसेन पुन्नाट कृत हरिवंशपुराणों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से शोध-प्रबंध भूमिका के अतिरिक्त सात अध्यायों तथा उपसंहार में विभक्त कर विस्तृत विवेचन के साथ प्रस्तुत किया गया है।

भूमिका के अन्तर्गत पुराणों का परिचय देते हुये पुराण शब्द की व्युत्पत्ति, पुराण का लक्षण, अन्य पुराणों का परिचय, रचनाकार व रचनाकाल पर सूक्ष्म दृष्टिपात करते हुये वैदिक पुराण साहित्य में वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** एवं जैन पुराण साहित्य में जिनसेन पुन्नाट कृत **हरिवंशपुराण** (७८३ ई.) का स्थान बताया गया है।

प्रथम अध्याय में दोनों हरिवंश पुराणों का कथानक विस्तृत रूप से वर्णित है। वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** के कथानक में सर्वप्रथम हरिवंश के माहात्म्य का वर्णन करते हुये श्रवण विधि का उल्लेख किया गया है। भगवान विष्णु के अवतारों के वर्णन के बाद श्रीकृष्ण की कथा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिसमें कंस के द्वारा देवकी के गर्भस्थ शिशुओं की निर्मम हत्या, कृष्ण द्वारा शकट भंजन, पूतनावध, यमलार्जुन पतन, कालिय दमन, गोवर्धन पर्वत धारण कर गौओं एवं गोपों की रक्षा, कंस वध, द्वारिका निर्माण तथा प्रद्युम्न कथा आदि का विस्तृत विवेचन देते हुये पुनः हरिवंश कथन एवं श्रवण का महत्व बताया गया है।

जिनसेन कृत **हरिवंश पुराण** के कथानक में लोक के आकार, राजवंशों की उत्पत्ति, हरिवंश का अवतार, वसुदेव की चेष्टाएं, नेमिनाथ का चरित, द्वारिका निर्माण, युद्ध वर्णन और निर्वाण-ये आठ शुभ अधिकार कहे गये हैं।

लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः। हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवविचेष्टितम्।।
चरितं नेमिनाथस्य द्वारवत्या निवेशनम्। युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणेऽष्टौ शुभा इमे।।
(जिन. हरि. १/७१-७२)

वसुदेव के रूप सौन्दर्य एवं विवाहों का वर्णन करते हुये वसुदेव-देवकी विवाह, श्रीकृष्ण जन्म कथा, श्रीकृष्ण द्वारा कंस वध, द्वारिका निर्माण, जरासंघ वध तथा बलदेव का कृष्ण वियोग विस्तृत रूप से वर्णित है।

द्वितीय अध्याय में उभय पुराणों का तुलनात्मक अध्ययन कथानक, पात्र व सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। कथानक में कथाओं के उन अंशों का, जो दोनों ही पुराणों में न्यूनाधिक अन्तर के साथ वर्णित हैं, उल्लेख किया गया है। पात्रों में जो पात्र दोनों ही पुराणों में समान हैं परन्तु चरित्र में कुछ अन्तर है, का उल्लेख किया गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन वर्णित है।

तृतीय अध्याय में उभय पुराणों के वर्ण्य विषय का विवेचन है जिसमें मूलकथा के अतिरिक्त अवान्तर कथाओं का समुचित उल्लेख है। वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** की मूलकथा में श्रीकृष्ण के उन प्रसंगों का वर्णन है जो महाभारत से अछूते हैं। जिनसेन कृत **हरिवंशपुराण** की मूल कथा में नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। अवान्तर कथाओं में वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** में श्रीकृष्ण द्वारा किया गया दैत्यों का वध व विष्णु के अवतारों का वर्णन है। जिनसेन कृत **हरिवंशपुराण** में अवान्तर कथाओं में तिरसठ शलाका पुरुषों का वर्णन करते हुये चौबीस तीर्थंकरों के विस्तृत वर्णन के साथ कंस, चाणूर, मुष्टिक, जरासन्ध आदि का वध, द्वारिका निर्माण व ध्वंस, कृष्ण वध तथा अन्त में सभी के दीक्षा ग्रहण करने व दीपावली उत्सव मनाने का कारण बताया गया है।

चतुर्थ अध्याय में पात्रों के तुलनात्मक अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें दोनों ही पुराणों के मुख्य एवं गौण पात्रों का वर्णन है।

पंचम अध्याय में नेमिनाथ एवं श्रीकृष्ण के परात्पर स्वरूप पर दृष्टिपात किया गया है। तीर्थंकर नेमिनाथ का जो स्वरूप जैन परम्परा में है वही स्वरूप श्रीकृष्ण का वैदिक परम्परा में है। अन्तर यह है कि वैदिक परम्परा के कृष्ण प्रवृत्ति मार्गी हैं, वह अपने भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण कर उन्हें सांसारिक दुखों से बचाते हैं जबकि जैन

परम्परा के तीर्थंकर नेमिनाथ निवृत्ति मार्गी हैं और वे अपने उपासकों को त्याग व संयम का उपदेश देकर मोक्ष का मार्ग दर्शाते हैं।

षष्ठ अध्याय में उभय पुराणों की समाज व संस्कृति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। सामाजिक व आर्थिक जीवन का वर्णन बहुतायत में समान है, परन्तु धार्मिक जीवन अन्तर के साथ वर्णित है क्योंकि दोनों ही पुराण दो अलग-अलग धार्मिक परम्पराओं पर आधारित हैं। वैदिक परम्परा पर आधारित वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** में व्रतों का अत्यधिक महत्व बताया गया। वे पुण्यफल की प्राप्ति हेतु होते थे जबकि जैन परम्परा पर आधारित जिनसेन कृत **हरिवंशपुराण** में व्रतों के विस्तृत वर्णन के साथ सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप, त्याग आदि पर भी विशेष बल दिया गया है। जैन परम्परा के मुनि धर्म का भी विशेष उल्लेख है।

सप्तम अध्याय में उभय पुराणों के काव्यात्मक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है। दोनों ही पुराणों में उपमा, रूपक व उत्प्रेक्षा अलंकार; प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण तथा वीर, करुण, शान्त व श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। श्रृंगार रस का जिनसेन कृत **हरिवंशपुराण** में अति विस्तृत वर्णन है।

अन्तिम अष्टम अध्याय में उभय पुराणों की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए सभी अध्यायों का निष्कर्ष बताया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि दोनों ही पुराण अपने-अपने धर्म का प्रचार करने वाले हैं तथा इन पुराणों का अपनी-अपनी धार्मिक परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। इनके श्रवण वं कथन से पुण्य फल की प्राप्ति होती है। दोनों परम्पराओं के पुराणों में श्रीकृष्ण अपने प्रतिनारायण (शत्रु) के हन्ता हैं। जहाँ वेदव्यास कृत **हरिवंशपुराण** के केन्द्र बिन्दु भगवान श्रीकृष्ण हैं, जिनसेन पुन्नाट कृत **हरिवंशपुराण** के मुख्य आकर्षण बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित है। यह भी ध्यातव्य है कि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का जितना विस्तृत वर्णन जिनसेन कृत पुराण में है उतना वेदव्यास कृत पुराण में नहीं।

- ६२, नादान महल रोड, मुन्नेलाल कागजी कोठी, लखनऊ

जनगणना २००१ के अनुसार भारत में जैनधर्मानुयायी

— श्री रमा कान्त जैन

भारत सरकार द्वारा प्रत्येक दस वर्ष पर सम्पूर्ण देश की जनगणना कराई जाती है। पिछली जनगणना वर्ष २००१ में सम्पन्न हुई। रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया द्वारा सितम्बर २००४ में प्रकाशित 'The First Report on Religion : Census of India 2001' में राज्यवार देश की सम्पूर्ण जनसंख्या के सापेक्ष निवास कर रहे विभिन्न धर्मानुयायियों की संख्या, उनका कुल जनसंख्या में अनुपात, साक्षरता प्रतिशत आदि कई महत्वपूर्ण सूचना समाहित हैं।

उक्त रिपोर्ट के अनुसार भारत में राज्यवार जैनधर्मानुयायियों की संख्या और उनकी साक्षरता के सम्बन्ध में स्थिति निम्नवत है–

क्रमांक	राज्य/ केन्द्र शासित क्षेत्र	कुल जनसंख्या	जैन जनसंख्या	कुल जनसंख्या में जैनों का अनुपात	साक्षरता दर	महिला साक्षरता दर
	भारत	1,02,86,10,328	42,25,053	0.4	94.1	90.6
01	जम्मू एंड काश्मीर	1,01,43,700	2,518	0.0	86.5	83.3
02	हिमाचल प्रदेश	60,77,900	1,408	0.0	96.3	94.8
03	पंजाब	2,43,58,999	39,276	0.2	95.9	94.2
04	चंडीगढ	9,00,635	2,592	0.3	97.3	95.8
05	उत्तरांचल	84,89,349	9,249	0.1	96.3	94.4
06	हरयाणा	2,11,44,564	57,167	0.3	94.2	90.7
07	दिल्ली	1,38,50,507	1,55,122	1.1	96.8	95.1
08	राजस्थान	5,65,07,188	6,50,493	1.2	94.0	89.3
09	उत्तर प्रदेश	16,61,97,921	2,07,111	0.1	93.2	90.3
10	बिहार	8,29,98,509	16,085	0.0	93.3	90.8
11	सिक्किम	5,40,851	183	0.0	90.7	86.2
12	अरुणाचल प्रदेश	10,97,968	216	0.0	85.2	75.7
13	नागालैंड	19,90,036	2,093	0.1	94.5	92.2
14	मणिपुर	21,66,788	1,461	0.1	94.5	93.5
15	मिजोरम	8,88,573	179	0.0	61.7	55.7
16	त्रिपुरा	31,99,203	477	0.0	82.9	78.4
17	मेघालय	23,18,822	772	0.0	69.9	65.3

18 असम	2,66,55,528	23,957	0.1	95.3	93.0
19 पश्चिम बंगाल	8,01,76,197	55,223	0.1	92.8	88.9
20 झारखंड	2,69,45,829	16,301	0.1	90.9	86.0
21 उड़ीसा	3,68,04,660	9,154	0.0	93.3	89.6
22 छत्तीसगढ़	2,08,33,803	56,103	0.3	96.8	94.8
23 मध्य प्रदेश	6,03,48,023	5,45,446	0.9	96.2	93.6
24 गुजरात	5,06,71,017	5,25,305	1.0	96.0	93.5
25 डामन और डियु	1,58,204	268	0.2	94.6	91.6
26 दादर और नगर हवेली	2,20,490	864	0.4	94.4	90.7
27 महाराष्ट्र	9,68,78,627	13,01,843	1.3	95.4	92.3
28 आंध्र प्रदेश	7,62,10,007	41,846	0.1	93.2	89.6
29 कर्णाटक	5,28,50,562	4,12,659,	0.8	84.3	77.2
30 गोवा	13,47,668	820	0.1	95.7	95.2
31 लक्षद्वीप	60,650	-	-	-	--
32 केरल	3,18,41,374	4,528	0.0	95.5	93.4
33 तमिलनाडु	6,24,05,679	83,359	0.1	92.2	88.4
34 पांडिचेरी	9,74,345	952	0.1	96.3	93.6
35 अंडमान निकोबार	3,56,152	23	0.0	100.0	100.0

उपर्युक्त आंकड़ों को देखने से विदित होगा कि सबसे अधिक जैनधर्मानुयायी (13,01,843) महाराष्ट्र राज्य में हैं जहां नाम के आगे 'जैन' लगाने की प्रथा नाम मात्र को है। एक लाख से अधिक जैन जनसंख्या वाले महाराष्ट्र सहित सात राज्य हैं राजस्थान (6,50,493), मध्यप्रदेश (5,45,446), गुजरात (5,25,305), कर्णाटक (4,12,659), उत्तर प्रदेश (2,07,111) और दिल्ली (1,55,122)। शून्य संख्या वाले लक्षद्वीप को छोड़कर 1,000 से कम जैन जनसंख्या वाले राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों की संख्या 10 है। अंडमान निकोबार द्वीप (23), मिजोरम (179), सिक्किम (183), अरुणाचल प्रदेश (216), डामन–डियु (268), त्रिपुरा (477), मेघालय (772), गोआ (820), दादर–नगर हवेली (864) और पांडिचेरी (952)। इन राज्यों/क्षेत्रों में रह रहे जैनधर्मानुयायी वहां के मूल निवासी नहीं अपितु अपने व्यवसाय आदि के लिये भारत के अन्य भागों से गये प्रवासी प्रतीत होते हैं।

यद्यपि 1991 की जनगणना की तुलना में प्रस्तुत जनगणना में जैनधर्मानुयायियों की संख्या में 26 प्रतिशत वृद्धि हुई है देश की कुल जनसंख्या (1,02,86,10,328) के सापेक्ष जैनधर्मानुयायियों की संख्या सम्बन्धी ये आंकड़े (42,25,053), जैसा कि श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जैन (सेठी) ने आशंका व्यक्त की है, वास्तविक आंकड़ों से काफी कम हैं। श्री सेठी का अनुमान है कि दिल्ली

में जैन आबादी चार लाख, उत्तर प्रदेश में 9–10 लाख, पश्चिम बंगाल में एक लाख से अधिक और सम्पूर्ण देश में सवा करोड़ से डेढ़ करोड़ के मध्य होनी चाहिये। उनकी आशंका में बल प्रतीत होता है। बिहार में आरा, पटना, भागलपुर, छपरा आदि स्थान जैनों के गढ़ हैं। वहां उनकी आबादी को देखते हुए बिहार में कुल जैन जनसंख्या 16,085 हमें भी वास्तविक से कम प्रतीत होती है। जनगणना आंकड़ों में लग रही इस विसंगति के परिहार का एक उपाय यह है कि जैन समाज की सभी आम्नायों का प्रतिनिधित्व करने वाली किसी राष्ट्रीय संस्था/संगठन द्वारा अपने स्तर से सम्पूर्ण जैन समाज की जनगणना कराई जाय और यदि उसमें सरकारी जनगणना आंकड़ों से अधिक जैन जनसंख्या पाई जाय तो उक्त जनगणना रिपोर्ट रजिस्ट्रार जनरल, भारत सरकार, नई दिल्ली के संज्ञान में लाकर उसके आधार पर सरकारी आंकड़ों को संशोधित करने का उनसे अनुरोध किया जाय। साथ ही भविष्य में सरकारी जनगणना के समय जब जनगणना कर्मी आयें तो 'व्यक्तिगत पर्ची' में 'धर्म' के स्तम्भ में अपने और अपने पारिवारिक सदस्यों के समक्ष 'जैन' अंकित कराने में पूर्ण सतर्कता बरतें।

यह उल्लेखनीय है कि इस बार भी जैन समुदाय ने जन्म दर सीमित रखकर राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम में अपना महती योगदान किया है। किन्तु पुरुष–महिला अनुपात प्रति हजार पुरुष 940 महिलाएं तथा 0 से 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों में बालिकाओं का अनुपात प्रति हजार बालक 870 बालिकाएं रह जाने से एक चिन्ताजनक सामाजिक समस्या ने भी जन्म लिया है।

हर्ष का विषय है कि जबकि देश में साक्षरता दर 64.8 है, शिक्षित जैनों का प्रतिशत 94.1 है और शिक्षित जैन महिलाओं का प्रतिशत भी 90.6 है जो इस समाज के प्रबुद्ध होने का द्योतक है। जैन समाज के उपरान्त साक्षरता क्रिश्चियन्स में 80.3 प्रतिशत है और तदनन्तर बौद्धों में साक्षरता 72.7 प्रतिशत है। केवल 6 राज्य ऐसे हैं जहां जैनों में साक्षरता दर 90 प्रतिशत से कम है। वे हैं– हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, कर्णाटक, त्रिपुरा, मेघालय और मिजोरम (61.7) तथा औसत दर 94.1 से अधिक साक्षरता वाले 19 राज्य हैं। स्त्री–शिक्षा की दृष्टि से अण्डमान निकोबार द्वीप समूह 100 प्रतिशत होकर सर्वोपरि है। उसके बाद चण्डीगढ़, गोआ, दिल्ली व हिमाचल प्रदेश तथा छत्तीसगढ़ क्रमशः द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम स्थानों पर हैं। सबसे कम 55.7 प्रतिशत स्त्री–साक्षरता मिजोरम में है। जैन समुदाय में शिक्षित अधिक होने का एक कारण यह भी है कि अधिकांश धर्मानुयायी नगरों में बसे हैं, ग्रामों में संख्या अपेक्षाकृत कम है और यह कि उनकी आर्थिक स्थिति अन्य समुदायों की अपेक्षा बेहतर है।

जहां तक उत्तरप्रदेश का सम्बन्ध है, सन् 1921 में हुई जनगणना में मात्र 68,111 और सन् 1971 की जनगणना में कुल 1,24,728 जैन धर्मानुयायी आकलित हुए थे। इस बार सन् 2001 की जनगणना में उनकी संख्या बढ़कर 2,07,111 हो गई है जो प्रदेश की कुल जनसंख्या 16,61,97,921 का मात्र 0.1 प्रतिशत है। इस प्रदेश में जैनों में सामान्य

साक्षरता दर 93.2 तथा जैन महिलाओं में शिक्षितों का प्रतिशत 90.3 पाया गया जिसे सन्तोषजनक कहा जायेगा। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, ललितपुर और झांसी जिलों की जैन समाजों को देखते हुए इस प्रदेश के जैनधर्मानुयायियों की संख्या के आकलन में त्रुटि रह जाने की आशंका निर्मूल नहीं है।

— ज्योति निकुंज, चारबाग
लखनऊ— 226 004

आत्मानुशासन से ही देश की उन्नति सम्भव

– आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज

संसार में केवल एक ही धर्म है वह है अहिंसा धर्म। सभी मनुष्य, पशु, पक्षियों को जीने का समान अधिकार है। आत्मानुशासन, अनेकान्त, अहिंसा और अपरिग्रह का पालन करने से ही विश्व में सुख-शांति स्थापित हो सकती है।

यदि भगवान महावीर के आत्मानुशासन, अनेकान्त, अहिंसा, अपरिग्रह एवं स्याद्वाद जैसे मूलभूत एवं सार्वकालिक सिद्धान्तों का जीवन में पालन किया जाए तो देश निश्चित रूप से उन्नति करेगा। आज शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति आ रही है। भावी पीढ़ी के लिए नए आयाम खुल रहे हैं। सत्य का उद्घाटन करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रामाणिकता ही सर्वोपरि होती है। ज्ञान के मामले में मिलावट नहीं चलती। अपरिग्रह आचरण से ही सत्य को सुरक्षित रखा जा सकता है तथा इसी से शासन और जनसामान्य में पवित्रता का संचार हो सकता है। सर्वाधिक प्राचीन लिपि ब्राह्मी का अध्ययन-अध्यापन भी विश्वविद्यालयों में होना चाहिए।

स्वास्थ्य-चर्चा-

शरीर में रेडियोधर्मी विकिरण से बचाव

शरीर में त्वचा के घाव शीघ्र ठीक होने में रेडियोधर्मी विकिरण बाधक होता है। भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में रेडियो विकिरण पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में विशेषज्ञों ने आंवला, तुलसी और अश्वगंधा के सेवन को रेडियोधर्मी विकिरण से बचाव का उपाय बताया है। विटामिन-सी और विटामिन-ई रेडियोधर्मी विकिरण से बचने के लिये उपयोगी हैं। आंवले में फेविनायड्स और आइसोफ्लेवोंस जैसे पोषक कण बहुतायत से होने के कारण वह रेडियो विकिरण से लड़ने में प्रभावी है। (दैनिक जागरण, लखनऊ ३-१२-२००४)

क्षणिकाएं

अहिंसा के पुजारी हिंसा में रत नज़र आते हैं।
अकारण विवाद कर चाकू छुरा चलाते नज़र आते हैं।।

XX XX XX

गृहस्थ अपना परिवार सीमित रखने में समझते हैं भलाई।
गृहत्यागी साधु अपना परिवार बढ़ा रहे, उन्हें हमारी बधाई।।

XX XX XX

सुना था काँटों में गुलाब खिला करते हैं
पर अब सुमन में काँटे खिले नज़र आते हैं
बात का बतंगड़ बनाने में हैं जो माहिर यहाँ,
दिलीगुबार अपना शब्द-सरिता में बहाते नज़र आते हैं।

XX XX XX

कौन कहता है निठल्ले हैं हम
अच्छे धन्धे से लगे हैं हम
कहना व्यर्थ, पढ़ाई बर्बाद हुई हमारी,
भरपूर सुस्वादु भोजन, सम्मान पाते हम।।

XX XX XX

धर्मप्राण है यह देश हमारा, धर्मप्राण संस्कृति है हमारी
धर्माचार्यों के विरुद्ध कुछ सुनना नहीं चाहती आत्मा हमारी
हर खून माफ उनका, हर दोष से परे वे,
कानून से हैं ऊपर, यही कहती है आस्था हमारी।।

XX XX XX

- रमा कान्त जैन
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

दीपावली

- श्री सुखमाल चन्द जैन

ऋजुकूला नदी के तट पर तीर्थंकर महाप्रभु भगवान महावीर को चुपचाप केवलज्ञान हो गया। १६६ दिन बाद समवसरण की रचना हुई तथा ओंकार की मेघ गर्जना जैसी भगवान की दिव्य ध्वनि के अनन्तवें भाग के अर्थ ग्रहण कर गौतमादि गणधर देवों ने द्वादशांग जिनवाणी की रचना की। यह सब वर्णन सूचना देता है कि जिनवाणी तो एक शब्द में वीतराग विज्ञान है जिसका रूप निर्विकल्पता और परिणाम निराकुलता है।

एक अनुश्रुति है कि कार्तिकी अमावस्या के उस पावन क्षण में जब भगवान का निर्वाण हुआ गौतम दूसरे ग्राम में गए हुए थे। आकाश में पुच्छल तारा (जो ६६ वर्ष में दिखाई पड़ता है) ने आकाश को प्रकाशमान कर दिया था। उस प्रकाश के निमित्त से भारत में भगवान महावीर के निर्वाण के उपलक्ष में दीपावली का पावन पर्व मनाया जाता है।

गौतम स्वामी जब संध्या समय लौट रहे थे तो मार्ग में जो लोग मिले उन्होंने कहा, "आप कहाँ थे? भगवान का निर्वाण हो गया।" गौतम अधीर हुए और पूछा कि "मेरे लिए कोई अंतिम आदेश था ?" उत्तर मिला कि "गौतम को कहा जाये कि वह सागर पार कर चुका है, किनारे पर आकर क्यों अटका खड़ा है ? अब एक क्षण भी प्रमाद न करे और नौका छोड़ दे।" गौतम को बोध हुआ। तत्क्षण उन्हें केवलज्ञान की उपलब्धि हो गई। अतः गौतम गणेश (गणधर प्रमुख) तथा केवलज्ञान लक्ष्मी की पूजा बड़ी दीवाली की रात्रि में की जाती है।

- एफ-३, ग्रीन पार्क (मेन)
नई दिल्ली- १६

कुण्डगामंपुरं

- श्री अजित प्रसाद जैन

भगवान महावीर के जन्म स्थान के संबंध में सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख आचार्य विमलसूरि (पहली शती ई.) कृत **पउमचरिउ** में 'कुण्डग्गामपुरं'' के नाम से मिलता है। **आवश्यक नियुर्क्तिकार** ने भी उसे 'कुण्डग्गामे' लिखा है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी (५वीं शती ई.), आचार्य गुणभद्र (६वीं शती ई.) तथा प्रायः सभी प्राचीन आचार्यों ने 'कुण्डपुरं' या 'कुण्डपुरनयर' के नाम से उल्लेख किया है। डॉ. ऋषभचंद्र फौजदार ने **शोधादर्श-४६** (पृष्ठ १८-२३) में प्रकाशित अपने लेख ''भगवान महावीर का जन्म स्थान'' में विभिन्न नामों का शास्त्र प्रमाण सहित विवरण प्रस्तुत किया है।

पू. प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती जी सहित अनेक विद्वज्जनों ने भगवान महावीर के जनक महाराज सिद्धार्थ की वैभवशाली नगरी के नाम में ग्राम शब्द लगाए जाने पर गहरा एतराज व्यक्त किया है। उसे ग्राम कहने को उन्होंने महावीर के जन्मस्थान का अवर्णवाद तक माना।

इस संबंध में हमारा निवेदन है कि हिंदी भाषा में 'ग्राम' शब्द का प्रयोग बस्ती के व्यापक अर्थों में होता आया है न कि केवल देहाती बस्ती के सीमित अर्थों में।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के सूत्रपात पर मई १८५७ में स्वतंत्रता सेनानियों की फौज मेरठ की जेल को तोड़कर दिल्ली की ओर चली तो इतिहासकारों ने लिखा है कि वह गांव के अन्दर न जाकर गांव के बाहर ही से दिल्ली की सड़क से चली गई। उस काल में भीं मेरठ एक चहारदीवारी बंध समृद्धिशाली नगर था जिसमें एक बड़ा किला भी था। हमारे लखनऊ नगर में आज भी नगर के मध्य स्थित एक मोहल्ले का नाम नया गांव है। उसका यह नाम खाली जमीन पर नई बस्ती बस जाने के कारण पड़ा था न कि किसी गांव तक नगर का विस्तार हो जाने के कारण।

इसके विपरीत हमारे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में कई ऐसे देहाती गांव हैं जिनके नाम में 'पुर' जुड़ा है। जैसे बागपत-बड़ौत के बीच सरूरपुर जिसकी कुछ वर्ष पूर्व तक कच्ची सड़क (जो उसे बागपत व बड़ौत के कस्बों से जोड़ती थी) एक डेढ़ फुट रेत से भरी थी तथा जिसका किसी भी काल में नगर होने का कोई इतिहास नहीं था।

-पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ

मूलगुण

- श्री मनोहर मारवडकर

शोधादर्श-५३ में कु. स्वयंप्रभा पि. पाटिल के प्रतिक्रमण का स्वरूप कथन करने वाले शोधपूर्ण लेख में वास्तविक पांच महाव्रत ही मूलगुण हैं, ऐसा आया है। इसमें एक विनम्र सुझाव है कि गाथा २०६ की **तत्त्व प्रदीपिका टीका** में यह वाक्य आया है 'सर्व सावद्य योग प्रत्याख्यान लक्षणैक महाव्रत व्यक्तिवशेनं हिंसानृत--- पंचतयंव्रतं----श्रमणानां मूलगुणा एव।' इसका अर्थ सार यह है कि वास्तव में सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यान स्वरूप एक महाव्रत की व्यक्तियां (विशेष प्रगटतायें) होने से हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह विरतिरूप पांच प्रकार के व्रत--पांच समिति,---पंचेन्द्रियरोध और सात क्रियाओं रूप निर्विकल्प सामायिक संयम के विकल्प याने भेद से ये अट्ठाईस श्रमणों के मूलगुण ही हैं। (**तत्त्वप्रदीपिका टीका** का अंश) इसी तरह आचार्य जयसेन उनकी **तात्पर्यवृत्ति टीका** में लिखते हैं 'निश्चयेन मूलमात्मा, तस्य केवलज्ञानादि अनन्त गुणाः ते च निर्विकल्पपरम सामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षवीजभूतेन मोक्षेजाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति। तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुण व्यक्तिकारणत्वात् निश्चयमूलगुणो भवति। यदा पुनः निर्विकल्प समाधौ समर्थो न भवति अयं जीवः तदा--अयं जीवोऽपि निश्चय मूलगुणाभिधान परमसमाधिअभावे छेदोपस्थापनं चारित्रं गृहणाति। --तच्च संक्षेपेण पंच महाव्रतरूपं भवति।' इसका तात्पर्य यह है कि मुनियों का मूलगुण एकमात्र सामायिक चारित्र है। जब उस सामायिक स्वरूप निर्विकल्प समाधि में स्थित रहने में मुनि असमर्थ होता है तब--छेदोपस्थापन चारित्र ग्रहण करता है। छेद होने पर उसमें फिर से स्थापित होना या उस सामायिक निश्चयव्रत के छेद होने पर व्रत भेद से उपस्थापित होना छेदोपस्थापन है। सामायिक संक्षेप में पंच महाव्रत रूप है। उन व्रतों के रक्षणार्थ पंच समिति आदि भेदों से मूलगुण के अट्ठाईस भेद होते हैं।

इस तरह से वास्तव में निर्विकल्प समाधिरूप सामायिक ही मोक्ष का बीज होने से एक ही मूलुगुण है तथा शेष पांच या अट्ठाईस जो मूलगुण कहे हैं वे इस सामायिक व्रत से छेद होने पर शुभभावरूप छेदोपस्थापन चारित्ररूप मूलगुण हैं।

-स्वधर्म, १७ (ब) महावीर नगर, जयपुर

भूले बिसरे

चित्रकार बसावनलाल, आगरा

अजमेर से प्रकाशित मासिक 'स्वतन्त्र जैन चिन्तन' के अगस्त २००४ के अंक में पृष्ठ १६-१८ पर दिये गये विवरण के अनुसार आगरा में मुग़ल बादशाह अकबर (राज्यकाल १५५६ ई.-१६०५ ई.) के समय में बसावनलाल नामक एक चित्रकार हुए थे। वह शाहबजाज गोत्रीय जैसवाल जैन थे। कहा जाता है कि वह बादशाह अकबर के चहेते चित्रकार थे। आगरा में काला महल पर एक गली है जो मुग़ल काल से 'बसावन गली' के नाम से जानी जाती है। उस गली में बादशाही दरबारियों का निवास रहा। 'बसावन गली' के निकट ही 'कटरा ख़ानख़ाना' है जो अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना के नाम पर है। अपने दोहों के लिये हिन्दी जगत में विख्यात कवि रहीम अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना ही थे। वह आध्यात्मिक कवि थे। उनके प्रेरणास्रोत उनके अभिन्न मित्र और सहयोगी उक्त बसावनलाल थे। रहीम की कृति **'शेरे रहीमी'** में बसावनलाल के बारे में बहुत कुछ लिखा बताया जाता है। अबुलफ़ज़ल ने भी अपनी **'आइने अकबरी'** में बसावनलाल के चित्रों और चित्रकारी की प्रशंसा की बताई जाती है। कला मर्मज्ञ एफ.आर. मार्टिन ने सन् १६०२ ई. में लंदन से प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Miniature Paintings of Persia, India and Turkey from 8th to 18 Century' भाग-१, पृष्ठ १२७ पर उल्लेख किया है कि बसावनलाल के कला-संग्रह **'रज्म-जामा'** में २६ चित्र हैं जो कि जयपुर (भारत) में हैं और इस चित्र-संग्रह का मूल्य ४०,००० पौंड है।

चित्रकार बसावनलाल के वंशज श्री कैलाशचंद जैन काला महल, आगरा में रहते हैं। उनका कहना है कि उन्होंने स्वयं उनके हस्तनिर्मित चित्रों को देखा है और उनकी प्रतिकृतियों का विक्रय किया है। उनके अनुसार विश्वस्तर के जितने भी संग्रहालय आज हैं उनमें निश्चित रूप से बसावनलाल जी के चित्र मिलेंगे। लंदन स्थित 'साउथ किंगडम भारतीय संग्रहालय' में अबुलफ़ज़ल के 'अकबरनामा' की जो हस्तलिखित प्रति है उस पर भी कदाचित् बसावनलाल जी की चित्रकारी है। अब से लगभग ४०० वर्ष पूर्व हुए चित्रकार बसावनलाल जी अपनी कलाकृतियों के कारण स्वयं तो अमर हुए ही उन्होंने जैन समाज को भी गौरवान्वित किया है।

कथाशिल्पी ऋषभचरण जैन

१ जनवरी, १९११ ई. को उत्तर प्रदेश के जिला बुलन्दशहर की ग्राम सराय सदर में एक मध्यवर्गीय सम्मानित दिगम्बर जैन परिवार मे जन्मे और ७ अगस्त, १९८५ ई. को महानगरी दिल्ली में दिवंगत हुए पुरानी पीढ़ी के कथाशिल्पी ऋषभचरण जैन अब अतीत की कहानी हो गये हैं। उन्हें याद रखने वाले अब विरले ही हैं। अभी कुछ दिन पूर्व वयोवृद्ध साहित्यकार गया प्रसाद तिवारी 'मानस' जी ने उनकी चर्चा की तो उनकी स्मृति ताजा हो गई। उनकी कतिपय कृतियां मेरे पुस्तक संग्रह में हैं। उन्हें उलटने पलटने लगा।

मात्र १४ वर्ष की वय में सन् १९२५ ई. में उनकी पहली कहानी **'मिट्टी के रुपये'** श्री रामचन्द्र शर्मा की पत्रिका 'महारथी' में प्रकाशित हुई थी। उसकी सफलता से प्रोत्साहित हो उन्होंने जमकर लेखन किया और शीघ्र ही हिन्दी के पाठकों के हृदय हार बन गये। सन् १९२८ में उन्होंने 'साहित्य मंडल' नामक प्रकाशन संस्थान की स्थापना कर अनेक कृतियों का प्रकाशन किया। प्रेमचंद जी द्वारा 'गोदान' उपन्यास की रचना के पूर्व सन् १९३१ ई. में बीस वर्ष की वय में वह अपने उपन्यास **'भाई'** का प्रणयन कर चुके थे जिसमें अपनी पैनी दृष्टि द्वारा उन्होंने ग्रामीण परिवेश के सामयिक सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों को उजागर किया था। उक्त उपन्यास में प्रतिष्ठित स्वस्थ मानवीय वृत्तियों ने उसे प्रेमचंद की परम्परा से जोड़ा।

सामाजिक कुरीतियों का भण्डाफोड़ करने का जो क्रांतिकारी कार्य पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र' ने किया था, ऋषभचरण उससे भी आगे बाजी मार ले गये। उनकी **'दिल्ली का कलंक'**, **'दुराचार के अड्डे'**, **'चम्पाकली'**, **'जनानी सवारियां'**, **'तीन इक्के'**, **'वेश्या-पुत्र'**, **'बुर्केवाली'** आदि कृतियों की लोकप्रियता ने उन्हें हिन्दी कथाकारों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित कर दिया था।

मन्दिर-दीप, **हिज हाइनेस**, **हर हाइनेस**, **मास्टर साहब**, **पैसे का साथी**, **ग़दर**, **रहस्यमयी**, **सत्याग्रह**, **भाग्य**, **मयखाना**, **दिल्ली का व्यभिचार**, **अफीम का अड्डा**, **दान** तथा अन्य कहानियां, **अनासक्त**, **हड़ताल**, **राजकुमार भोज** और **बिखरे मोती** उनकी अन्य मौलिक कृतियां हैं।

सन् १९३२ ई. में **'तपोभूमि'** उपन्यास का प्रणयन उन्होंने जैनेन्द्र कुमार के साथ मिलकर किया था।

अनेक मौलिक कहानियां और उपन्यास लिखने के अतिरिक्त ऋषभजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय अनुवाद के क्षेत्र में भी दिया था। ड्यूमा और टॉल्सटॉय की जिन कृतियों को अनुदित किया उनमें **'कैदी'**, **'कंठहार'**, **'बादशाह की बेटी'**, **'षडयन्त्रकारी'**, **'महापाप'** और **'देवदूत'** उल्लेखनीय हैं।

दिल्ली की चटक-बामुहावरा टकसाली बोली पात्रों के स्वरूप के सांचे में ढालने में पटु, सार्थक सटीक शब्दों का प्रयोग करने में निपुण और भाषा शैली की प्रवहमानता और सशक्तता में बेजोड़ ऋषभजी को लगभग ३२ कृतियों के सृजन का श्रेय है। सन् १९३४ ई. में उन्होंने साप्ताहिक **'चित्रपट'** का सम्पादन-प्रकाशन किया। तदनन्तर **'सचित्र दरबार'** पत्रिका प्रकाशित की। **'चित्रपट'** और **'सचित्र दरबार'** पत्रिकाओं के सम्पादन द्वारा उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में नये मानदण्ड स्थापित किये थे। सन् १९४२ ई. में वह फिल्म व्यवसाय में गये, किन्तु उसमें गहन आर्थिक क्षति हो जाने से उन्हें सन् १९४९ ई. में इतना गहरा मानसिक आघात पहुंचा कि वह अन्त तक उससे उभर नहीं पाये और शनैः शनैः साहित्य के क्षेत्र में पीछे छूट गये। उनके सुपुत्र श्री दिग्दर्शनचरण जैन ने उनकी कृतियों का पुनर्प्रकाशन कर उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने का सुकृत्य किया।

उनके निधन पर अपनी श्रद्धांजलि-विनयांजलि अर्पित करते हुए जैनेन्द्र कुमार जी ने उन्हें अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्तित्व स्वीकारते हुए लिखा था कि उन्हें लेखक बनाने का श्रेय ऋषभजी को ही है। उनकी पहली रचना 'मतवाला' में उन्होंने ही छपवाई थी और सन् १९२९ ई. में उनका पहला कहानी संग्रह 'फांसी' भी उन्होंने ही छापा था।

उन्हें अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए कहानीकार राजेन्द्र यादव ने लिखा था 'इन कहानियों में मिलता है हमें तत्कालीन समाज का प्रामाणिक परिवेश, बोली-बानी, रहन-सहन, कुरीतियों और विकृतियों के खिलाफ जिहाद, अमीर-गरीब की दूरियां, देश के लिये की जाने वाली कुर्बानियां--- वह आदर्शवादी परिवर्तनकामी नायक हैं।'

- रमा कान्त जैन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.
प्रगति प्रतिवेदन २००३-२००४

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., का गठन सन् १९७६ ई. में भगवान महावीर स्वामी का २५००वां निर्वाण महोत्सव वर्ष मनाने के लिये राज्य सरकार द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र., की उत्तराधिकारी संस्था के रूप में जैन धर्म की सभी आम्नायों के महानुभावों के सहयोग से किया गया था तथा गठन के तुरन्त बाद ही उसे सन् १८६० ई. के रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड करा लिया गया था जिसका नियमानुसार नवीकरण कराया जाता रहा है। वर्तमान नवीनीकरण सं. १६४२/२००२ दि. २७-१२-२००२ मार्च २००६ तक का है। समिति की सभी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ से ही सुचारू रूप से संचालन होता रहा है। समिति का पिछला प्रगति प्रतिवेदन (वर्ष २००२-२००३) शोधादर्श-५० (जुलाई-२००३) के पृष्ठ ६०-६४ पर प्रकाशित है। यहाँ वर्ष २००३-२००४ का प्रगति प्रतिवेदन प्रस्तुत है।

विगत वर्ष (१ अप्रैल, २००३ से ३१ मार्च, २००४) में भी समिति की सभी प्रवृत्तियों का सुचारु सम्पादन किया गया। संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(१) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय-

पुस्तकालय की स्थापना वर्ष १९७६ की श्रुत पंचमी को श्री मुन्नेलाल कागजी जैन धर्मशाला, चारबाग, लखनऊ में, धर्मशाला ट्रस्ट के सौजन्य से उपलब्ध कराए गए एक बड़े कक्ष में की गई थी तथा इसका विधिवत उद्घाटन अक्टूबर १९७६ में तत्कालीन उच्च शिक्षा मंत्री माननीय डॉ. रामजीलाल सहायक के कर-कमलों से कराया गया था। दिनांक १ अप्रैल, २००१ से पुस्तकालय को (जो पहले धर्मशाला के ऊपरी तल पर श्री मंदिरजी के अंदर के एक कक्ष में चल रहा था) धर्मशाला ट्रस्ट द्वारा भूतल पर विशेष रूप से निर्मित कराए गए तथा किराए पर उपलब्ध कराए गए एक बड़े कक्ष में स्थानान्तरित कर दिया गया है तथा संलग्न छोटे कक्ष में धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का वाचनालय स्थापित कर दिया गया है। तबसे पुस्तकालय-वाचनालय की लोकप्रियता में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त पुस्तकालय के अपने सदस्यों की संख्या जो २००१-२००२ में ३३ थी २००३-२००४ में ९० हो गई। और अब तो चारबाग ही नहीं, आसपास की कालोनियों में भी कदाचित् ही कोई जैन परिवार

बचा होगा जो पुस्तकालय का सदस्य न बना हो। अनेक अजैन बन्धुओं ने भी पुस्तकालय की सदस्यता ग्रहण की है। पुस्तकालय की प्रगति से प्रसन्न होकर उसके संवर्द्धन के लिए इस वर्ष (२००३-२००४ में) समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जैन ने रु. ५,२००/- तथा डॉ. एस. के. जैन (माडल हाउस, लखनऊ) ने २,०००/- की विशेष सहायता प्रदान की जिसके लिए हम इन दोनों महानुभावों के आभारी हैं।

पुस्तकालय में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति के अध्ययन हेतु जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तथा शोधार्थियों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भारतीय धर्मों, दर्शन व संस्कृति से संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य रखने का प्रयास किया जाता है। अपने विशिष्ट संकलन के लिए इन विषयों के शोधार्थी पाठकों में हमारा पुस्तकालय विशेष लोकप्रिय है तथा लखनऊ व कानपुर विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अनेक शोध छात्र इससे लाभ उठाते हैं। साधारण रुचि के पाठकों के लिए लौकिक व सामान्य ज्ञानवर्द्धक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत है।

इस वर्ष पुस्तकालय में रु. ३०,६१२/- मूल्य की पुस्तकों की वृद्धि हुई जिनमें से रु. २४,६६७/- मूल्य की ३८० पुस्तकें राजा राम मोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान, कोलकाता से प्रदेश के शिक्षा विभाग (पुस्तकालय कोष्ठक) के माध्यम से पुस्तक अनुदान के रूप में प्राप्त हुईं। साथ ही एक स्टील का बुक केस भी पुस्तकालय को अनुदानस्वरूप प्राप्त हुआ। साहित्य क्रय पर इस वर्ष २००३-०४ में रु. ५,६१५ का व्यय हुआ। कुछ महानुभावों से भेंट स्वरूप साहित्य भी पुस्तकालय को प्राप्त हुआ। ३१ मार्च, २००४ को पुस्तकालय में कुल पुस्तकों की संख्या ७०४१ थी।

शोध पुस्तकालय के वाचनालय में लगभग ६५ धार्मिक पत्र-पत्रिकाएं (साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रयमासिक, चातुर्मासिक व षट्मासिक) आती हैं जिनमें अधिकांश शोधादर्श के परिवर्तन में प्राप्त होती हैं तथा शेष की समिति आजीवन सदस्य है। पुस्तकालय- वाचनालय से प्रतिदिन ४५-५० पाठक लाभ उठाते हैं। पुस्तकालय-वाचनालय का समय प्रातः ८.०० से अपराह्न २.०० बजे का है। सोमवार को अवकाश रखा जाता है। पुस्तकालय का कार्य पुस्तकालय व्यवस्थापिका (कु.) हेमा सक्सेना, एम.ए., द्वारा पूर्ववत देखा जाता रहा। इस वर्ष उसका वेतन रु. १२००/- प्रतिमास से बढ़ाकर १५००/- प्रतिमास कर दिया गया। साथ ही उसके कार्य से प्रसन्न हो समिति के अध्यक्ष श्री लूणकरण नाहर जी ने उसे अपनी ओर से रु. १५००/- का प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया।

(२) शोधादर्श-

समिति की चातुर्मासिक शोध पत्रिका **'शोधादर्श'** का प्रकाशन फरवरी १९८६ में प्रारंभ किया गया था। इसके आद्य सम्पादक डॉ. ज्योति प्रसाद जैन इतिहास-मनीषी थे। उनके जीवनकाल में केवल ६ अंक ही (फरवरी १९८८ तक के) निकल पाए थे। जून १९८८ में उनके स्वर्गवास के उपरांत अंक ७ से प्रधान सम्पादक का उत्तरदायित्व डॉ. शशि कान्त बड़ी योग्यता से निभाते रहे तथा अंक ३० (नवम्बर १९९६) से प्रधान सम्पादक का कार्यभार हम ही सम्हाल रहे हैं। पत्रिका की लोकप्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है तथा आज यह पत्रिका देश की उच्च स्तरीय धार्मिक शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। समय से प्रकाशित वर्ष के तीनों अंकों (४९-५०-५१) के २५८ पृष्ठों में प्रकाशित उपयोगी पठनीय सामग्री की प्रबुद्ध वर्ग द्वारा व्यापक सराहना हुई है। पत्रिका के सम्पादन, प्रेषण आदि में किए गए बहुमूल्य योगदान के लिए मैं अपने सहयोगी सम्पादक श्री रमा कांन्त जी का विशेष आभारी हूँ। इस वर्ष **शोधादर्श** के प्रकाशन पर कुल व्यय रु. २८,५४८/- हुआ। इस पत्रिका के प्रोत्साहन स्वरूप कई प्रशंसक पाठकों ने इस वर्ष रु. ४,५५८/- भेंट किये।

(३) तीर्थंकर छात्र सहयोग कोष-

इस वर्ष ४२ विपन्न पर धर्मनिष्ठ छात्र-छात्राओं को अध्ययन जारी रखने हेतु आंशिक सहायता प्रदान करने पर रु. १५,०८४/- का व्यय किया गया। हमारे उप मंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी ने इस कोष का भार सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया जिसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

(४) महावीर जन कल्याण निधि-

इस वर्ष दो असहाय धर्मनिष्ठ महिलाओं को वस्त्र-औषधि हेतु सहायता प्रदान करने पर रु. २,१००/- का व्यय किया गया। हमारे संयुक्त मंत्री श्री रमा कान्त जी ने निधि का भार भी सम्हालने में बहुमूल्य योगदान किया।

समिति के लेखे का आडिट इस वर्ष भी सर्वश्री ए. जिन्दल चार्टर्ड एकाउंटेंट्स द्वारा किया गया। पुस्तक अनुदान और स्टील बुक केस के अतिरिक्त कुल प्राप्तियां रु. ९०,६५२.०८ पै. तथा व्यय रु. ७२,८०१.५० पैसा (इसमें पुस्तकालय कक्षों का रु. ८००/- प्रतिमास की दर से रु. ६,६००/- किराया सम्मिलित नहीं है क्योंकि उसका समायोजन श्री मुन्नेलाल कागजी धर्मशाला ट्रस्ट को पूर्व में दी गई अग्रिम धनराशि से होता है) हुआ। प्राप्ति-व्यय की विवरण तालिका संलग्न है।

चिर वियोग- इस बीच हमारे तीन सदस्य हमसे बिछुड़ गये। २० जुलाई, २००३ को हमारी समिति के आजीवन सदस्य, प्रमुख समाजसेवी एवं धर्मनिष्ठ श्रावक वयोवृद्ध श्री इन्द्रजीत जैन, एडवोकेट, कानपुर का स्वर्गवास हो गया।

१६ सितम्बर, २००३ को हमारी समिति के माननीय सदस्य और 'वीर' पत्रिका के सह सम्पादक श्री सुरेन्द्र सिंह जैन, दिल्ली का निधन हो गया।

२६ जनवरी, २००४ को हमारी समिति के माननीय आजीवन सदस्य और प्रबंधसमिति के भी सदस्य तथा शोधादर्श के चिन्तनशील लेखक लगभग ८७ वर्षीय धर्मानुरागी, साहित्यानुरागी श्री कैलाश भूषण जिंदल, एडवोकेट का लखनऊ में शरीर शान्त हो गया।

समिति के अध्यक्ष आदरणीय श्री लूणकरण जी नाहर का सक्रिय सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें निरन्तर मिलता रहा जिसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। उपाध्यक्ष श्री कन्हैयालाल जी एवं श्री नरेशचन्द्र जी, कोषाध्यक्ष श्री बिजयलाल जी, संयुक्त मंत्री श्री रमा कान्त जी, उप मंत्री श्री महेन्द्र प्रसाद जी और श्री रोशनलाल जी नाहर तथा प्रबंध समिति के सभी माननीय सदस्यों के सौहार्दपूर्ण सहयोग के लिए हम आभारी हैं। श्री रमा कान्त जी ने तो **शोधादर्श** के सम्पादन सहित समिति के सभी कार्यों के निष्पादन में अपने सक्रिय सहयेाग से हमारा हाथ बंटाया।

- अजित प्रसाद जैन,
महामंत्री

श्री जिनवाणी स्तुति

वीर-हिमाचल ते निकसी, गुरु गौतम के मुखकुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है।।
ज्ञान पयोनिधि मांहि रली, बहु भंग-तरंगनि सों उछरी है।
ता शुचि शारदगंग नदी, प्रति मैं अंजुरी करि शीश धरी है।।
या जग मन्दिर में अनिवार, अज्ञान-अन्धेर छयो अति भारी।
श्री जिनकी ध्वनि दीप-शिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी।।
तो किस भांति पदारथ पाति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं, धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी।।

TIRTHANKAR MAHAVIR SMRITI KENDRA SAMITI, U. P.

STATEMENT OF RECEIPTS & PAYMENTS FOR THE YEAR ENDING 31st MARCH, 2004

RECEIPTS		Rs. P.
Balance b/d		
F.D.R.s	1528445.00	
Savings Bank	37690.40	
Cash in Hand	6545. 36	1572680.76
Research Library		
Security Deposit	900.00	
Subscription	1220.00	
Donation	7250.00	9370.00
Magazine		
Subscription	3590.00	
Donation	4558.00	8148.00
Membership Fee		1103.00
Miscellaneous Receipts		880.00
Interest on F.D.R.s		69146.08
Savings Bank Interest		1837.00
F.D.R. Maturity Interest		168.00
		1663332.84

PAYMENTS		Rs. P.
Research Library		
Salary Libr. Asst.	17000.00	
Salary Cleaner	1440.00	
Contingencies	445.00	
Stationery & Prtg.	689.25	
Postage	628.25	
Books	5615.00	
Refund of Security	80.00	25897.50
Magazine Expenses		
Printing & paper	24865.00	
Postage	3545.00	
Other Expenses	138.00	28548.00
M. J. K. Nidhi Expenses		2100.00
T.C S Kosh Scholership Exp.		15084.00
I.T. Counsels Fee		600.00
Audit Fee		500.00
Bank Charges		72.00
Balance C/d		
F D R.s	1526613.00	
S. B. Account	59337.48	
Cash in Hand	2580.86	1590531.34
		1663332.84

Lucknow
July 31, 2004

A. P. Jain
महामंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ

Compiled from information and explanations furnished
For A. Jindal & Co.
Chartered Accountants
Alok Jindal

साहित्य सत्कार

Philosopher Karma Scientists : By Prof. L. C. Jain and Dr. Rajendra Trivedi; Publisher-Sri Brahmi-Sundari Prasthasram Samiti, Kanchan Vihar, Vijaya nagar, Jabalpur; Pbn. Year-2003; Pages 60; Price Rs. 50/-

The learned authors have presented in this book a scholarly dissertation on the mathematical contribution contained in the earliest works of the Philosopher Karma Scientists—Acharya Gunadhar (Ist. cent. B.C.)- Kasaya Pahuda; Acharya Dharsena and Muni Pushpadanta-Bhoot Bali (1st cent. A.D.) Shatkhandagama; Yati Vrashabha (1st. cent. A.D.) -Tiloyapannati; and their commentators Acharya Virasena and Nemi Chandra. Those works written in Prakrit language are based on the Agamic knowledge contained in certain chapters (Pejdosa Pahuda and Karma Payadi Pahuda) of the Fifth Purva (Jnan Pravada) and show the high mathematical acumen of these Philosopher-Karma Scientists. The book is a valuable contribution to literature on Jainism in English Language.

शुद्धोपयोग विवेचन : विवेचक-लेखक-श्री मनोहर मारवडकर नागपुर; प्र० श्री अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् ट्रस्ट, १२६ जादोन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुर, जयपुर; २००३; पृ. २६८; मूल्य-रु. ३०/-

संसार आवागमन का मुख्य कारण मोह कषाय युत मिथ्यात्व या मिथ्यादृष्टि होना है। जैन श्रावक का चौथा गुणस्थान असंयत या अविरत सम्यग्दृष्टि है। अतः मोक्षमार्ग की यात्रा चौथे गुणस्थान से ही प्रारंभ होती है। इस गुणस्थान का जीव मुख्य रूप से शुभोपयोग-अशुभोपयोग में प्रवृत्ति करता है जिनसे पुण्य-पाप का बंध होता है। शुभोपयोग रूपी धर्मध्यान की क्रियाओं (जैसे-जिन दर्शन, जिन पूजन, सामायिक आदि) में भी अल्पावधि के लिए शुद्धोपयोग रूपी प्रवृत्ति का सद्भाव संभव है तब दर्शन मोहनीय का असद्भाव हो जाता है तथा उतने काल में ही असंख्यात कर्मों की निर्जरा हो जाती है। श्रावक की प्रतिमाएं चारित्र मोहनीय की उत्तरोत्तर निषेधात्मक प्रवृत्तियां हैं जो उसे मुनि चर्या के लिए प्रशिक्षित करती हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक के शुद्धोपयोग होना, विद्वान लेखक का लीक से हटकर चिन्तन है। तथापि है तो यह आगम सम्मत ही, यदि ऐसा नहीं होता, तो भरत चक्रवर्ती, १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ तथा अन्य अनेक मुनिराज चारित्र मोहनीय के त्यागरूप दिगम्बर मुनि चर्या धारण करते ही अल्पावधि में ही सर्व घातिया कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते और आवागमन मुक्त नहीं हो जाते।

पुस्तक के १३ अध्यायों में शुद्धोपयोग का विवेचन किया गया है। १४वां अध्याय प्रश्नोत्तर खण्ड है जिसमें तत्संबंधी कतिपय प्रश्न तथा उनके शास्त्रीय समाधान प्रस्तुत किए गए हैं। १५वें अध्याय में विद्वान लेखक ने अपने चिन्तन का उपसंहार किया है। उनके चिन्तन का निष्कर्ष है कि हर व्रती-अव्रती त्यागी जैन को जिनवाणी माता का संतुलित स्वाध्याय अतिभक्ति से करना कराना चाहिए और शुद्धोपयोग द्वारा चौथे, पांचवे गुणस्थान में निजानन्द का भोग करके ही मुनि बनना चाहिए। पुस्तक चिन्तन की नई दिशा प्रदान करती है तथा स्वाध्याय-मनन करने योग्य है।

- अजित प्रसाद जैन

जीवन दर्पण : लेखक व संकलनकर्ता श्री केवलचन्द जैन; प्र. शा. लालचन्द मदनराज एण्ड कं., ७/२८, एम.पी. लेन, चिकपेट, बेंगलोर-५६००५३; द्वितीय आवृत्ति; पृ. २९२; सचित्र; मूल्य रु. ५०/-

जिन शासन व धर्म में श्रद्धा रखने वाले लेखक केवलचंद जी ने सत्संग, अध्ययन, स्व अनुभव, चिन्तन और मनन से जीवन को सुरभित करने वाले जो सुमन संचित किये, उन्हें सर्वजन हिताय प्रस्तुत कृति में सजाने का सफल प्रयास किया है। सरल भाषा शैली में निबद्ध इस पुस्तक में १८५ शीर्षकों के अन्तर्गत जीवन के लिये मार्गदर्शक धर्म, संस्कृति व इतिहास की त्रिवेणी प्रवाहित की है। ऐसा करते हुए जहां जो उन्हें दूसरों की सूक्ति आदि रुचिकर लगीं, उनका उपयोग उन्होंने अपने लेखन में निस्संकोच होकर किया है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय से सम्बद्ध होते हुए भी लेखक का इस 'जीवन दर्पण' में आम्नाय निरपेक्ष और धर्म निरपेक्ष उदार दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। इस जीवनोपयोगी कृति के प्रणयन हेतु लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

मानस ब्रज भाषा काव्य कुसुमाकर : संकलनकर्ता श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस', ३७२, राजेन्द्र नगर, सातवां मार्ग, लखनऊ; प्र. प्रीता प्रकाशन, श्रीमती डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी, ब्लाक-ए-५११, जवाहर सर्किल के पास, मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७; २००३; पृ २५६+८; मूल्य रु. २००/-

मुग़ल बादशाह औरंगजेब के समय में हुए कवीन्द्र त्रिवेदी द्वारा संकलित **'कवीन्द्र हजारा'**, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयास से **'सुन्दरी तिलक'** नाम से प्रकाशित श्रृंगार रस के सवैयों के संकलन और जिला परिषद हरदोई में अध्यापक रहे हफीजुल्ला खां के **'हजारा हफीजुल्ला खां'** से प्रेरित हो वयोवृद्ध साहित्यकार ब्रजभाषा छन्दों के सशक्त रचनाकार गया प्रसाद तिवारी 'मानस' जी के मन में भी ब्रजभाषा के कवियों के छन्दों का संकलन करने की अभिलाषा जागृत हुई। भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक युग के कवियों के स्मरणीय छन्दों को चार खण्डों- देवी-देवता खण्ड, षट-ऋतु खण्ड, रूप-यौवन-स्नेह खण्ड और विविध खण्ड-में संकलित करने का श्रम-साध्य साहित्यिक कार्य करने में वह कई वर्षों से जुटे हुए हैं। प्रस्तुत संकलन, जो प्रथम खण्ड है, में भक्तिकाल से लेकर आधुनिक युग तक के ब्रजभाषा के रचनाकारों के विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं के भक्तिगान सम्बन्धी लगभग एक हजार छन्द-कवित्त, सवैया आदि-संकलित हैं। यह काव्य कुसुमाकर ब्रजभाषा के काव्य रसिकों और भक्तगणों के लिये आनन्ददायी होगा यह निस्सन्देह है। इस संकलन की प्रस्तुति हेतु 'मानस' जी साधुवाद के पात्र हैं।

प्रतिष्ठा-प्रभा स्मारिका वर्ष २००१ : प्र. प्रतिष्ठा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, ५५८/२८ घ, सुन्दरनगर, आलमबाग, लखनऊ; पृ. १२०

लखनऊ की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'प्रतिष्ठा' ने अपने कार्यकाल के पाँच वर्ष पूर्ण होने पर यह स्मारिका प्रकाशित की है जिसमें अन्य रुचिकर सामग्री के साथ स्थायी महत्व और उपयोगिता की ऐसी सामग्री भी, जिसे जानने की जिज्ञासा और उत्सुकता जनसामान्य में होती है, प्रस्तुत की है। इसमें सत्रहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक के लखनऊ के साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय, लखनऊ में कार्यरत प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं का परिचय समाहित है। साथ ही लखनऊ के वर्तमान साहित्यकारों के नाम, पते, आवासीय टेलीफोन संख्या और उनकी प्रकाशित कृतियों की जानकारी दी गई है। लखनऊ से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं और दैनिक समाचार पत्रों का विवरण भी इसमें समाहित है। इस उपयोगी स्मारिका के प्रकाशन हेतु 'प्रतिष्ठा' संस्था बधाई की पात्र है।

- रमा कान्त जैन

समाचार विमर्श

महाराष्ट्र शासन ने मुनि श्री तरुणसागरजी महाराज को राजकाय अतिथि का दर्जा दिया

जलगांव- महाराष्ट्र शासन ने क्रांतिकारी संत जैन मुनि श्री तरुणसागरजी को राजकीय अतिथि का दर्जा प्रदान कर सम्मानित किया है। इस आशय की सूचना शासन ने यहाँ मुनि श्री को दी। मुनि श्री को राजकीय अतिथि का दर्जा मिलने के पश्चात प्रशासन ने उनको दी जा रही सुरक्षा एवं आवास व्यवस्था का जायजा लिया और समीक्षा की। जिला प्रशासन को मुनि श्री को राजकीय अतिथि के अनुरूप सभी सुविधाएं उपलब्ध कराने के निर्देश भी दिए गए हैं। उक्त जानकारी **मुनि श्री के निजी प्रवक्ता कृष्णा रतलामी** ने दी। (जैन गज़ट, १५ जुलाई, २००४).

निःसन्देह क्रान्तिकारी संत के विरुद से अपने को अलंकृत किए हुए, आचार्य पुष्पदंतसागर जी के परम शिष्य, पू. युवा मुनि श्री तरुणसागरजी महाराज एक प्रभावक संत हैं। जहां तक हमें स्मरण आता है उनके रायपुर प्रवेश पर छत्तीसगढ़ राज्य सरकार ने भी उन्हें राज्य अतिथि का सम्मान प्रदान किया था। मुम्बई में चातुर्मास रत उनके गुरुवर्य को भी कदाचित् महाराष्ट्र सरकार इसी प्रकार सम्मानित कर चुकी है। इतना तो है ही कि मुनि श्री के इस राज्य सम्मान को स्वीकार करने के लिये उनके गुरुवर्य का अनुमोदन है।

हमें यह विचित्र और विरोधाभास सा ही लगता है कि अहिंसा धर्म की अपने जीवन में अधिकाधिक साधना-पालन करनेवाले व 'अहिंसा परमो धर्मः' की अलख जगानेवाले तथा पूर्ण अपरिग्रह के प्रतीक दिगम्बर मुनि वेश को धारण करने वाले मुनिराज अब सुरक्षा कर्मियों की संगीनों के साए में विचरण करते स्व-पर कल्याण करेंगे तथा राज्य अतिथियों को अनुमन्य अन्य सुविधाओं का भी उपभोग करेंगे। बड़े-बड़े राजनेताओं की तर्ज पर ये मुनिराज अपना निजी प्रवक्ता भी रखते हैं। दिगम्बर जैन मुनि की सिंह वृत्ति अब इस युग में कदाचित् इसी प्रकार परिभाषित होगी।

३६ वर्ष की आयु में ही क्रान्तिकारी मुनि श्री तरुणसागरजी को छोटी-बड़ी ३६ कृतियों के सृजन का श्रेय है। इनमें से अधिकांश में उनके प्रवचनों के संकलन हैं। चश्मा तथा बुलगैनिन कट सजी संवरी मूंछ-दाढ़ी उनके मुख मण्डल की भव्यता में

विशेष अभिवृद्धि करती है तथा उनकी प्रायः सभी कृतियां उनके भव्य चित्रों से सुसज्जित रहती हैं।

मुनि श्री की एक कृति का नाम है "मैंने सुना है"। इसके शीर्षक से हमें बरबस प्राचीनतम माने जाने वाले (श्वे.) **सुत्तागम आचारांग** के प्रथम स्कन्ध के प्रथम वाक्य 'सुयं में आउसं' (हे आयुष्मान मैंने सुना है) का स्मरण हो आया। इसके अर्थ स्पष्ट करते हुए व्याख्याकारों ने लिखा है कि सुधर्मा स्वामी ने अपने परम शिष्य जम्बू स्वामी को **आचारांग** की वाचना देते हुए कहा कि जैसा मैंने उन (महावीर) भगवान की दिव्य ध्वनि में सुना उसी का मैं वर्णन कर रहा हूं। मध्यप्रदेश के एक सामान्य धर्मनिष्ठ ग्राम्य परिवार में जन्मे क्रांतिकारी मुनि जी १३ वर्ष की प्रारंभिक किशोर अवस्था में ही अपने गुरुवर्य से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर उनके संघ में सम्मिलित हो गए थे तथा उनका सारा शिक्षा-अध्ययन गुरु चरणों में ही हुआ है। **"मैंने सुना है"** कृति में उन्होंने अपने गुरुवर्य के इस उपकार को स्वीकार किया है। वस्तुतः उनकी प्रायः सभी कृतियों में उनके गुरुवर्य का ही ज्ञान झलकता है।

क्रांतिकारी मुनि श्री एक अति कुशल प्रवचनकार के रूप में उभरे हैं। आरोह-अवरोह युक्त उनकी प्रवचन शैली भी अनूठी है जो श्रोताओं को बरबस आकर्षित कर लेती है। बड़े धीमे स्वर में बोलते हुए एकाएक बड़े तेज स्वर में शब्दों की द्रुतगति से बौछार करने लगते हैं और पुनः धीमे स्वर में आ जाते हैं। इस अनूठी शैली के कदाचित् वे एक मात्र प्रयोगकर्ता हैं। सीधी सरल बात को भी वे इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि वह नई लगे, उत्तेजक लगे। **"मैंने सुना है"** में से उनके प्रवचनों के निम्न वाक्य उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं-

"--मैं महावीर को चौराहे पर खड़ा करना चाहता हूँ--मैं महावीर को जैनों से मुक्त करना चाहता हूँ। --इसीलिए मैंने तुम्हारे मंदिरों में प्रवचन देना बन्द कर दिया है--।"

ये वाक्य पढ़कर एकाएक तो हम चौंके कि जिन महावीर को सभी आचार्य सर्वदोष रहित घोषित करते नहीं थके, उनमें इन मुनि श्री ने क्या दोष ढूंढ निकाले जिनके लिए वे उन्हें चौराहे पर खड़ा करना चाहते हैं। किन्तु आगे पढ़ने पर स्पष्ट हुआ कि मुनि श्री का आशय यह नहीं है। वे केवल महावीर की शिक्षाओं का सार्वजनिक प्रचार-प्रसार करना चाहते हैं। वह केवल जैनों तक सीमित रहें यह उन्हें अभीष्ट नहीं। कदाचित् उनके गुरुवर्य ने उन्हें यह नहीं पढ़ाया होगा कि हिन्दी भाषा

में किसी को चौराहे पर खड़ा करना उसके दोषों को सार्वजनिक रूप से उजागर करने और उनकी सार्वजनिक रूप से भर्त्सना करने के अर्थों में मुहावरे के रूप में प्रयोग किया जाता है।

मुनि श्री को सहस्रों श्रोताओं की भीड़ के समक्ष सार्वजनिक स्थलों पर ही प्रवचन करना सुहाता है। जैन मंदिरों में जैनों की सीमित संख्या में नहीं। उनके प्रवचन संकलनों में श्रोताओं की भारी भीड़ के समक्ष प्रवचन करते हुए भव्य चित्र भी एकाधिक प्रायः रहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व उनके गुरुवर्य आचार्य श्री ने लखनऊ आगमन पर कुछ इसी प्रकार कहा था कि उनके प्रवचन की व्यवस्था किसी सार्वजनिक स्थल पर की जानी चाहिए जहाँ सहस्रों जैनाजैन श्रोताओं की भीड़ उनके प्रवचनों से लाभान्वित हो सके।

क्रान्तिकारी मुनि श्री तरुणसागरजी को विचित्रता से कुछ अधिक ही प्रेम है। उनके एक प्रवचन संकलन, जिसका शीर्षक **"मै सिखाने नहीं, जगाने आया हूं"** है, में भगवान महावीर के चित्र के नीचे णमोकार मंत्र को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहुणं।
णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं

एकाएक तो हम चौंके कि णमोकार मंत्र में इस उलट फेर का क्या तात्पर्य। फिर ध्यान से देखने पर समझ में आया कि मुनि श्री ने इस महामंत्र के पाठ में कोई उलट फेर नहीं की है केवल लिखने की शैली की विचित्रता है जिसमें नीचे से प्रारम्भ कर ऊपर अंत किया जाता है क्योंकि मंत्र समाप्ति का विराम उन्होंने "साहुणं" के बाद ही लगाया है। कदाचित् यह चीनी शैली है।

मुनि श्री के प्रति समाज में कितना आकर्षण है, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनके चातुर्मास स्थापना कलश की बोली ही एक श्रद्धालु श्रेष्ठी जी ने रु. १० लाख से अधिक में ली। उनके पूरे चातुर्मास पर तो व्यय ४०-५० लाख रुपये से कम कदाचित् क्या होगा। उनके अन्य गुरुभाई पू. मुनि श्री सौरभसागरजी के दो वर्ष पूर्व लखनऊ में सम्पन्न हुए चातुर्मास में चातुर्मास समिति के आयोजकों ने कुल व्यय लगभग ४० लाख बताया था।

एक ६ वर्ष की बालिका की साध्वी दीक्षा

(इंडिया टुडे में प्रकाशित तथा अहिंसा महाकुम्भ जुलाई २००४ में उद्धृत किए गए एक समाचार के सम्पादित अंश)

पुणे (महाराष्ट्र) के रिहायशी इलाके में एक सादे से फ्लैट के रसोई घर के फर्श पर ६ साल की एक सांवली सी लड़की सिकुड़ी बैठी है जिसका नाम अब साध्वी प्रीति वर्षा श्री जी है। जिस कोने में वह बैठी है वहां लकड़ियों की पट्टियों से घेरा बनाया गया है। यह वह पवित्र जगह है जो उसके भोजन के लिये निश्चित है। उसने सफेद कपड़े पहिने हुए हैं और उसका सिर भी सफेद ओढ़नी से ढका हुआ है जिसके नीचे उसके बाल कुछ कुछ उग आए हैं। दीक्षा के बाद उसके बाल हाथ से उखाड़ दिए गए थे। अब उसे वर्ष में दो बार इसी प्रकार केश लुंचन करना होगा।

कुछ महीने पहिले दीक्षा के पूर्व इस बालिका का नाम प्रियाल बगरीचा था। उसके पिता मध्य प्रदेश में व्यापारी हैं। प्रायश्चित करने और सादा जीवन बिताने के लिए उसने भौतिक दुनिया छोड़ दी है। दूसरों के लिए वह आज नन्हीं साध्वी है पर आज वह एक कानूनी विवाद का केन्द्र भी है जो बच्चों को भिक्षु बनाए जाने को चुनौती देता है। वरिष्ठ वकील रवीन्द्र पारेख ने, जो खुद जैन हैं, एक परिवार अदालत में एक याचिका दायर की है जिसमें उन्होंने मांग की है कि प्रियाल को उसके परिवार को न देकर उनके कब्जे में दे दिया जाय तथा उसका अभिभावक बना दिया जाय।

इसकी शुरुआत १६ मार्च को हुई जब प्रियाल को जैन श्वे. मू.पू. पंथ की शिक्षाओं के तहत मुंबई के मलाड में दीक्षा दी जाने वाली थी। बच्ची को जोर का बुखार था और उसे दीक्षा जबर्दस्ती दी जा रही थी। मलाड पुलिस से सम्पर्क किया गया तो उसने असमर्थता जताई कि बाल दीक्षा गैर कानूनी नहीं है।

जैन श्वेताम्बर आम्नाय में (मूर्ति पूजक व स्थानकवासी दोनों में) बाल दीक्षा की परम्परा अर्से से चली आ रही है, किन्तु अब समय आ गया है जब इस पर रोक लगे। यद्यपि बाल्यकाल में दीक्षित किए गए कतिपय साधु-साध्वियों ने अपनी असाधारण प्रतिभा व विद्वत्ता से जिन शासन की भारी प्रभावना की है तथा कर रहे हैं तथापि उनमें से अनेकों से श्रमण शिथिलाचार में अभिवृद्धि भी हुई है। उन्हें उस आयु में सामान्य जीवन जीने से वंचित कर दिया गया जब उन्हें स्वयं कुछ सोचने समझने की बुद्धि ही विकसित नहीं हुई थी और न ही लौकिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला था। आज के प्रबुद्ध जन बाल दीक्षाओं को उन बालक-बालिकाओं के सामान्य जीवन जीने के मानवाधिकार का हनन मानते हैं जो आज अक्षम्य अपराध की श्रेणी में गिना जाता है।

भ. पार्श्वनाथ त्रिसहस्राब्दि महोत्सव

दि. २२ अगस्त, २००४ (श्रावण शुक्ल सप्तमी) को भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष कल्याणक महोत्सव के शुभ अवसर पर कुण्डलपुर (नालन्दा) में पू. गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने मंगल प्रवचन में ६ जनवरी, २००५ को वाराणसी में उनकी प्रेरणा से मनाए जाने वाले त्रिसहस्राब्दि जन्म कल्याणक महोत्सव के उद्घाटनोत्सव में भाग लेने के लिए समस्त समाज का आह्वान किया।

इस पुनीत अवसर पर विद्वज्जनों की जो संगोष्ठियां आयेजित की जाएं, हमारा विनम्र सुझाव है कि उनमें प्राचीनतम पौराणिक कथ्यों के आधार पर इस पर गंभीर विवेचन कर निर्णय लिया जाए कि भगवान पार्श्वनाथ का सही दीक्षा-वन व केवल ज्ञान-कमठ उपसर्ग भूमि कौन सी है। **उत्तरपुराणकार** आ. गुणभद्र ने उसे वारांणसी और गंगातट के बीच का वन "अश्वत्थ वन" लिखा है तथा उसे ही भगवान की केवलज्ञान भूमि बताया है। किन्तु अहिछत्र (जिला बरेली) तथा बिजौलिया (जिला भीलवाड़ा) भी इस गौरव के दावेदार हैं। हमने भी **शोधादर्श**-५० जुलाई २००३ के अपने सम्पादकीय लेख में इस विषय पर अपना कुछ चिन्तन प्रस्तुत किया था।

निर्वाण लाडू

श्रावण शुक्ल सप्तमी को इस वर्ष भी भगवान के निर्वाण स्थल श्री सम्मेदशिखर जी (सुवर्णभद्रकूट) पर विशेष रूप से तथा देश भर के अनेक मंदिरों में भ. पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक भक्तिपूर्वक सोल्लास मनाया गया।

'जैन गज़ट' (१६.६.२००४) में प्रकाशित समाचार के अनुसार कैलाशनगर (दिल्ली) के पार्श्वनाथ जिन चैत्यालय में फिरोजाबाद से सपरिवार पधारे एक श्रावक श्रेष्ठी जी ने २३ कि.ग्रा. का शुद्ध लाडू पूज्य गणिनी श्री विशुद्धमती जी ससंघ के समक्ष ताण्डव नृत्य करके चढ़ाया।

'वीर निकलंक' में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार इंदौर में तो भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव में १००८ किलो का लाडू चढ़ाया गया जिसके लिये क्रेन की सहायता ली गई और सात भट्टियां जलाई गईं।

अजैन मंदिरों-मठों में तो देवता को चढ़ाए गए लाडू आदि श्रद्धालुओं को प्रसाद वितरण तथा पुजारियों के उपभोग में लाए जाते हैं और इस प्रकार उनका सदुपयोग हो जाता है पर जैन मंदिरों में चढ़ाए गए द्रव्य को निर्माल्य द्रव्य कहा गया है जिसके उपभोग से घोरपाप कर्म का बंध होता है। हमें आश्चर्य है कि इस भारी लाडू, जिसके

निर्माण में भारी खाद्य सामग्री के अपव्यय के अतिरिक्त अग्निकायिक आदि के जीवों की भारी हिंसा भी हुई होगी, के चढ़ाने में पूज्य गणिनी जी व उनके संघ का अनुमोदन रहा।

लाडू चढ़ाने के पूर्व श्रेष्ठी जी ने ताण्डव नृत्य किया। भक्ति वश सामान्य नृत्य तो भक्ति और हर्ष का प्रतीक है, पर ताण्डव नृत्य की बात समझ में नहीं आई। ताण्डव नृत्य तो नटराज शिव के उस आसुरी नृत्य को कहा जाता है जिसे करते-करते वे पूर्ण नग्न हो गए थे।

राजनेताओं के लिए भी शैक्षणिक योग्यता और प्रशिक्षण-

पूज्य आचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी ने १५ अगस्त, २००४ को राष्ट्रीय स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर पोदनपुर त्रिमूर्ति बोरीवली मुम्बई में उपस्थित हजारों श्रद्धालुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि राजनेताओं के लिए भी शैक्षणिक योग्यता और प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। (**जैन गज़ट** ७.१०.२००४)

हम भी आचार्यश्री के सद्परामर्श से पूर्ण सहमत हैं। यदि ऐसा हो जाय तो राजनेताओं के भ्रष्टाचार में अवश्य ही कमी आएगी तथा प्रशासन में भी कुशलता बढ़ेगी। पर हम आचार्यश्री से यह भी सविनय पूछना चाहेंगे कि क्या धर्म गुरु बनने के लिए लौकिक शिक्षण आवश्यक नहीं है यद्यपि अपनी आम्नाय के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन तथा प्रवचन कुशलता आदि का आवश्यक प्रशिक्षण तो उन्हें गुरु चरणों में प्राप्त हो जाता है किन्तु लौकिक शिक्षण की कमी से कभी-कभी बड़ी उपहासास्पद स्थिति पैदा हो जाती है।

आचार्यश्री के प्रायः सभी युवा शिष्य मुनि मध्य प्रदेश के सामान्य ग्राम्य परिवारों में जन्मे तथा किशोरावस्था के प्रारंभ में ही गुरु चरणों में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर गुरु संघ में सम्मिलित हो गए थे। उनमें से कदाचित् ही किसी ने किसी प्राथमिक पाठशाला के आगे शिक्षा प्राप्त की होगी।

भगवान महावीर स्वामी के जीवन के साथ एक किंवदंती भी जुड़ी है कि एक बार जब वे एक वियावान जंगल में महाविषधर चंड कौशिक सर्प की बाम्बी के निकट ध्यानस्थ खड़े थे, सर्प ने क्रुद्ध होकर उनके पैर में डंक मारा तो पैर से खून के स्थान पर दुग्ध की धारा निकली तथा महावीर ने हाथ से क्षमा करते हुए उसे सम्बोधा। इस कथा में दुग्ध की धार को भगवान की असीम करुणा और क्षमा के भाव को रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य श्री के एक प्रवचन कुशल परम शिष्य युवा मुनिराज ने इस प्रसंग पर बोलते हुए अपने प्रवचन में फरमाया था कि मनुष्य के रक्त कणों में सामान्यतया लाल तथा सफेद कण (Corpuscles) होते हैं पर भगवान महावीर के शरीर में केवल श्वेत कण थे जिसके कारण सर्प डंक के घाव से भी दूध की धार निकली थी। यदि इन मुनिराज को शरीर विज्ञान का **मामूली लौकिक** ज्ञान भी होता तो वे कदापि ऐसी उपहासास्पद व्याख्याा नहीं करते। शरीर रक्त के लिये लाल और श्वेत दोनों प्रकार के कणों (Corpuscles) की संतुलित मात्रा अनिवार्य है जिसके बिना जीवन ही नहीं रह सकता। दूध की देवी जननी व गउ आदि दुधारु पशुओं के भी अंग विशेष से दूध निकलता है न कि हर किसी अंग से।

हां, लौकिक शिक्षा के अभाव से एक लाभ तो अवश्य है कि शास्त्रों-पुराणों में लिखित सभी बातों को आगम मानकर उनमें बिना मीन मेख के श्रद्धान अवश्य हो जाता है जिसे आज की भाषा में सम्यक्त्व की संज्ञा दी जाती है।

भट्टारक सम्मेलन-

चिकलठाणा (महाराष्ट्र)- दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र जैनगिरि जटवाड़ा में १४ अगस्त २००४ को भट्टारक सम्मेलन आचार्य श्री देवनंदि जी के सानिध्य में आयोजित किया गया। इस अवसर पर महासभाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने भट्टारक परम्परा का आभार मानते हुए कहा कि भट्टारकों ने विगत ६०० वर्षों के दीर्घकाल में विषम परिस्थितियों में जैनधर्म और संस्कृति के रक्षण का महान कार्य किया है। श्री नीरज जैन सतना ने भी भट्टारक परम्परा का उपकार मानते हुए कहा कि ५०० वर्ष तक विविध स्थानों के भट्टारकों द्वारा किसी भी स्वार्थ से दूर रहकर धर्म और संस्कृति का रक्षण करने के कारण ही आज जैन धर्म जीवित है।

इस भट्टारक सम्मेलन में भाग लेने के लिए कोल्हापुर, नरसिंहपुरा, नांदणी, कारकल, जिनकांची, अरिहंतगिरि, मूड़बिद्री, कनकगिरि तथा अविनाभावी के भट्टारक गण पधारे थे। सम्मेलन में सभी भट्टारकों को निम्नलिखित किसी न किसी उपाधि से विभूषित किया गया-संस्कृति दिवाकर, संस्कृति भास्कर, संस्कृति प्रभाकर, संस्कृति प्रतिपालक, संस्कृति भूषण, संस्कृति सम्राट, संस्कृति मार्तण्ड, संस्कृति संवर्द्धक तथा संस्कृति पालक। आचार्य देवनंदि जी ने आशीर्वाद प्रदान किया।

दक्षिण भारत महासभा के अध्यक्ष श्री आर. के. जैन मुंबई के प्रयास से यह भट्टारक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। महासभा से जुड़े अनेक महानुभाव सम्मेलन में

उपस्थित हुए तथा डॉ. अनूपकुमार जैन, डा. नीलम जैन व डा. चिरंजीलाल बगड़ा ने भी अपने विचार रखे। **(जैन गज़ट दि. १६.६.०४)**

मुसलमानी शासनकाल में १६वीं शताब्दी तक भट्टारकों ने जैन धर्म का संरक्षण किया यह तो निर्विवाद है क्योंकि उस समय वे ही धर्म गुरुओं के पद पर प्रतिष्ठित थे। उत्तर भारत में तो २० वी सदी के प्रारम्भिक वर्षों में ही अप्रासंगिक हो जाने के कारण भट्टारक पीठों का लोप हो गया, किन्तु दक्षिण भारत में महाराष्ट्र, कर्णाटक, तमिलनाडु आदि में न केवल भट्टारक पीठें चल रही हैं अपितु स्थानीय जनता में उनका मान भी है। ये परिग्रहवान भट्टारकगण अपने-अपने मठ-मंदिरों को अतिशय क्षेत्र घोषित कर उनकी व्यवस्था तो करते ही हैं साथ ही उनकी धन-सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग भी करते हैं। चार-पाँच वर्ष पूर्व जब 'तपस्वी सम्राट' आचार्य श्री सन्मतिसागर म. के परम शिष्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी ने सागवाड़ा (राज.) के समीप की पहाड़ी पर योगीन्द्रगिरि नाम से एक नवीन अतिशय क्षेत्र का निर्माण करोड़ों की लागत से (भव्य भट्टारक आवास सहित) कराया था तथा वर्ष १९९९ के चातुर्मास के उपरांत उनके भट्टारक पट्टाभिषेक किए जाने की घोषणा भी कर दी गई थी तो विद्वज्जनों द्वारा इसका घोर विरोध किया गया था तथा विशद चर्चा के उपरान्त यह निष्कर्ष भी निकला था कि मोक्षमार्ग के साधकों में वर्तमान के भट्टारकगण किसी भी श्रेणी के साधकों में यहां तक कि क्षुल्लक तक में भी उनकी गिनती नहीं की जा सकती। अपरिग्रही मुनियों के जीवदया के उपकरण मयूर पिच्छी को भट्टारकों ने अपने पद का अलंकरण बना लिया है जो पिच्छी की मर्यादा का घोर हनन है।

हम समझते थे कि बड़े-बड़े समाजनेता व चिन्तकों ने जिन्होंने अपनी उपस्थिति से इस भट्टारक सम्मेलन को गरिमा प्रदान की, भट्टारकों की प्रशंसा के कसीदे पढ़ने के साथ-साथ ही कम से कम उनसे मयूर पिच्छी त्यागने का तो आग्रह किया होगा। पर प्रकाशित रिपोर्टों से ऐसा कुछ कहा गया नहीं प्रतीत होता। उल्टे सभी भट्टारकों को संस्कृति मार्तण्ड-दिवाकर-प्रभाकर आदि की उपाधियों से विभूषित कर उन्हें और गौरवान्वित कर दिया गया। ये परिग्रहवान भट्टारकगण किस प्रकार की जैन संस्कृति का किस प्रकार संरक्षण संवर्द्धन कर रहे हैं, हमारी समझ के बाहर है। इस अवसर पर उपस्थित तथा उक्त उपाधि अलंकरण का मूक या मुखर अनुमोदन करने वाले समाज नेताओं तथा विद्वानों से हम इस प्रश्न के समाधान की अपेक्षा करते हैं।

दो वर्ष पूर्व 'तपस्वी सम्राट' आ. सन्मतिसागरजी ने अपने दूसरे प्रिय शिष्य मुनि जयसागर जी को नग्न मुनि वेश में बेड़िया क्षेत्र (गुजरात) के विकास के लिए उसका भट्टारक बना दिया तथा यह भी घोषित कर दिया कि नग्न भट्टारक का पद पंच परमेष्ठी में उपाध्याय के ऊपर तथा केवल आचार्य के नीचे होता है। उस अवसर पर बोलते हुए बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर जी ने श्रावकों को नसीहत दी थी कि **"गृहस्थ का इतना ही कर्तव्य है कि वह साधुओं को नमस्कार करे तथा समय पर नवधा भक्तिपूर्वक आहार दान दें। क्या ? क्यों ? अगर मगर आदि की आवश्यकता नहीं है। अपने-अपने धर्म के अनुसार प्रवृत्ति करने पर व्यवस्था सही रहती है।"**

बालाचार्यश्री ने श्रावकों को यह नसीहत अपने गुरुवर्य 'तपस्वी सम्राट' आचार्य सन्मतिसागरजी के ससंघ सानिध्य में ही दी जिन्होंने अपने परम शिष्य जयसागर मुनिराज को न केवल नग्न भट्टारक बनाया वरन् साथ ही उन्हें उपाध्याय के ऊपर घोषित कर महिमा मंडित भी किया। अतः इस नसीहत में उनके गुरुवर्य का अनुमोदन तो अवश्य ही रहा होगा। उनकी इस नसीहत का अर्थ है कि साधु चाहे कितनी भी विसंगतियां धर्म में, अपने साध्वाचार में करे, श्रावकों को उनकी आलोचना करने का अधिकार नहीं।

बालाचार्य श्री तथा उनके गुरुवर्य अपने को अब तक भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित शुद्ध आम्नाय का ही साधु मानते आए हैं। यदि ऐसा है तो वे कृपया स्पष्ट करें कि क्या भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य ने नग्न या सवस्त्र भट्टारकों की भी मोक्ष मार्ग के साधकों के अन्तर्गत कोई व्यवस्था की है।

अब यह दूसरी बात है कि हमारे ये आचार्यश्री तथा नग्न एवं सवस्त्र भट्टारकगण कुन्दकुन्द आम्नाय का राग अलापना बन्द कर आचार्य पुष्पदंतसागर तथा उनकी युवा मुनि मंडली द्वारा प्रचारित पुष्पदंत आम्नाय के पुरोधा बन जायें तथा 'मंगलम् पुष्पदंताद्यो' में ही अपनी श्रद्धा केन्द्रित करें।

ये महंगी चातुर्मास आमंत्रण पत्रिकाएं-

हमारे सामने तीन महंगी वर्षायोग स्थापना आमंत्रण पत्रिकाएं हैं जो बहुरंगी भव्य चित्रों से सुसज्जित महंगे लेमिनेटिड आर्ट पेपर पर छपी हैं-

(१) आ. श्री विद्यासागरजी के शिष्य पू. मुनि श्री सुधासागरजी म. की सूरत में वर्षायोग स्थापना की २' १०" X १' १०"

(२) पू. आ. श्री दयासागरजी की डिब्रूगढ़ (असम) वर्षायोग स्थापना की १' १०" X १' ५"

(३) आ. श्री दयासागरजी की शिष्या आर्यिका श्री सुप्रकाशमती जी की श्री ऋषभदेव केसरिया जी अतिशय क्षेत्र में वर्षायोग स्थापना की जो उनके गुरुवर्य की पत्रिका से बड़ी है २' ५" X १' ८"

हजारों की संख्या में अनेक स्थानों के मंदिरों, श्रावक समाजों आदि को भेजी गई इन तीनों ही पत्रिकाओं पर संबंधित चातुर्मास समितियों का व्यय लाखों में हुआ होगा। पूरे चातुर्मास के व्यय में तो समाज के तीस-चालीस लाख या अधिक भी व्यय हो सकते हैं।

अब इन तीनों आमंत्रण पत्रिकाओं में वर्षायोग स्थापित करने वाले इन तीनों महाव्रतधारियों की उपाधियां-यशगान का भी किंचित् अवलोकन करलें-

(१) श्रमण संस्कृति के महान उन्नायक, वर्तमान युग के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ आचार्य श्री विद्यासागरजी के योग्यतम सुशिष्य, ज्ञान गंगा के भागीरथ, भारतीय संस्कृति के उद्गाता, प्राचीन धरोहरों के प्रबल संरक्षक एवं प्रकाशक, पुरातत्वविद एवं वास्तुमर्मज्ञ आध्यात्मिक एवं सत पूज्य मुनि पुंगव श्री १०८ सुधासागर जी म.-

(यह उल्लेखनीय है कि इन मुनिराज ने देवगढ़ व कुछ अन्य क्षेत्रों की पुरातत्व महत्व की अनेक अमूल्य मूर्तियों व पुराशिल्प कृतियों को पूजा योग्य बनाने के लिए उनका पूर्ण आधुनिकीकरण कर दिया जिसका पुरातत्वविदों एवं विद्वज्जनों में भारी रोष रहा।)

(२) बाल ब्रह्मचारी, आत्म साहसी, वात्सल्यमूर्ति, उपसर्ग विजेता, निमित्त ज्ञानी, विद्यानुवाद के ज्ञाता, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, बुन्देलखण्ड के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य, पूर्वांचल की धरा पर प्रथम चरण रखने वाले परम पूज्य आचार्य श्री १०८ दयासागरजी महाराज--

(कुछ वर्ष पूर्व जब ये आचार्यश्री गोहाटी में चातुर्मास रत थे, इन्हें अपनी संदिग्ध चर्या के कारण गोहाटी की जागरूक समाज के रोष का भाजन बनना पड़ा था तथा चातुर्मास के बीच में अन्यत्र पलायन करना पड़ा था। गोहाटी समाज ने इनके विरुद्ध एक प्रस्ताव भी पारित किया था। आचार्यश्री ने मुनि/आर्यिकाएं दीक्षा तो कई दी हैं पर कोई शिष्य/शिष्या उनके साथ नहीं रहते और आचार्यश्री अपनी संघ (?) संचालिका के साथ अकेले ही विहार करते हैं।)

(३) प. पू. दयासागर म. की परम शिष्या, बाल योगिनी, चारित्र चन्द्रिका, वात्सल्यमूर्ति, ज्योतिपुंज, रत्नत्रय चन्द्रिका आर्यिका १०५ श्री सुप्रकाशमती जी माताजी--

हमारे अनेक आचार्य/मुनिराज/आर्यिका माताएं अपने पिछले चातुर्मास की पत्रिकाओं को अगले चातुर्मास के आयोजकों के मार्गदर्शन हेतु संजोकर रखते हैं। हमारे अनेक तथाकथित अपरिग्रही धर्मगुरुओं की यश-ख्याति लिप्सा का यह एक नमूना है।

दूसरी ओर ऐसे भी कुछ आचार्य/मुनिराज हैं जिनकी चातुर्मास पत्रिकाएं अत्यन्त साधारण रूप में उपाधियों के आडम्बर से विहीन सादा आकार के साधारण कागज पर छपी प्राप्त हुई हैं और इस प्रकार उन्होंने अपने को व्यर्थ के यश ख्याति प्रचार से तो बचाया ही, आयोजकों को भी इस मद पर अपव्यय करने से बचा लिया यथा-

(१) आचार्य श्री विमलसागरजी म. के सुशिष्य आचार्य श्री भरतसागरजी म. ससंघ की कुचामन सिटी (राज.) में चातुर्मास स्थापना।

(२) श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोला में पू. आर्यिका श्री सौभाग्यमती माताजी का ससंघ चातुर्मास।

हम इन आचार्य श्री एवं आर्यिका माताजी का अभिनन्दन करते हैं।

हमारे राजनेताओं का मांसाहार शौक : शाकाहार पर दुगना टैक्स-

लोकसभा में वित्त मंत्री श्री चिदम्बरम ने बजट पेश करते समय शाकाहारी व मांसाहारी पदार्थों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि सरकार शाकाहारी खाद्य पदार्थों पर कर ३२ प्रतिशत से १६ प्रतिशत तथा मांसाहारी खाद्य पदार्थों पर १६ प्रतिशत से ८ प्रतिशत कर रही है।

वित्त मंत्री जी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि शाकाहारी खाद्य पदार्थों पर मांसाहारी खाद्य पदार्थों की अपेक्षा दुगना कर कब से चला आ रहा है। कदाचित् पिछली कई सरकारों के कार्यकाल से यह स्थिति चली आ रही है। भले ही देश का बहुभाग शाकाहारी हो पर हमारे राजनेताओं को (सभी पार्टियों को) जनता के हित से क्या लेना देना? उन्हें तो अपने मांसाहार प्रेम में मांसाहारी खाद्य पदार्थों को सस्ता कर अधिक लोकप्रिय बनाने तथा शाकाहारी खाद्य पदार्थों को महंगाकर उनके उपयोग को निरुत्साहित करने से मतलब है।

जवाहरात व्यवसायी बढेर जी का मोक्षगमन-

जयपुर- महाप्रयाण यात्रा के लिए सात दिन पहिले संथारा ग्रहण करने वाले प्रसिद्ध जवाहरात व्यवसायी व समाजसेवी ६२ वर्षीय श्री पूनमचंद बढेर ने ७ जुलाई बुधवार २००४ सुबह साढ़े आठ बजे अन्तिम सांस ली और वे सांसारिक बंधन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हो गए। (जैन दर्पण जयपुर जुलाई-अगस्त- २००४)

केवल संथारा लेकर प्राण त्यागने से कोई भी मनुष्य मोक्ष गमन नहीं कर सकता। संसार से मुक्ति/मोक्ष गमन केवलज्ञान की उपलब्धि के उपरांत ही होती है। हमारी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं को इस प्रकार के समाचार प्रकाशित करके मोक्ष के अवर्णवाद से बचना चाहिए।

- अजित प्रसाद जैन

महावीर गुणधाम

जय जय त्रिशला पुत्र तुम !
महावीर गुण-धाम।
शान्ति दूत- पद पद्म में,
कोटिक बार प्रणाम।।

वर्द्धमान गुणवान प्रभु,
जय-जय श्रद्धा धाम।
हो धरती पर अवतरित,
किया धर्म हित काम।।

कुण्डग्राम पावन किया,
नृप सिद्धार्थ निकेत।
अवगुण-सरि-निष्तरण हित
बने धर्म के सेत।।

कहा परिग्रह त्याज्य अति,
परम अहिंसा धर्म,
सभी जीव पायें दया,
है जीवन का मर्म।।

- दयानन्द जड़िया 'अबोध'
'चन्द्रामण्डप' ३७०/२७,
हाता नूर बेग,
संगम लाल वीथिका मार्ग,
सआदतगंज, लखनऊ-३

समाचार विविधा

श्री सम्मेदशिखर जी के संबंध में झारखंड उच्चन्यायालय का फैसला

श्री सम्मेदशिखर जी पर अधिकार के संबंध में दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदायों के बीच सन् १९६७ से चल रहे मुकदमों की अपील पर झारखंड उच्च न्यायालय की फुल बैंच ने २४ अगस्त, २००४ को अपना फैसला सुना दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया है कि दिगम्बरों को न केवल पूजा अर्चना का अधिकार है बल्कि अपने सम्प्रदाय के तीर्थयात्रियों के लिए टोंकों के निकट धर्मशाला बनाने का पूर्ण अधिकार है। न्यायालय ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कि दोनों सम्प्रदायों के बीच लम्बे समय से चल रहे विवादों का पूर्ण समाधान करने के लिए तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जैन समाज में दिगम्बरों की संख्या ७० प्रतिशत् है अतः एक कल्याणकारी राज्य में यह अनुचित होगा कि श्री सम्मेदशिखर तीर्थ का स्वामित्व व प्रबंध एक अल्पसंख्यक श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के हाथ में छोड़ दिया जाए, तीर्थ की सुरक्षा और तीर्थयात्रियों के लिए मौलिक सुविधाओं की व्यवस्था के उद्देश्य से न्यायालय ने राज्य सरकार को निर्देश और सुझाव दिया है कि जैन समाज के सभी सम्प्रदायों और उप सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी बनाई जाए जो उक्त उद्देश्यों की पूर्ति करे। न्यायालय ने यह निर्देश और सुझाव भी दिया है कि राज्य सरकार उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक प्रशासन भी नियुक्त कर सकती है जो जैनों की उपरोक्त संयुक्त समिति की सहायता व परामर्श से कार्य करेगा। पर्वत पर स्थित टोंकों और मंदिरों के अतिरिक्त उनके निकटवर्ती ४६ एकड़ से अधिक भूमि के प्रबंध का कार्य भी न्यायालय ने उपरोक्त समिति को सौंपने का निर्देश दिया है और निर्णय दिया है कि टोंकों की पार्श्ववर्ती भूमि का उपयोग समस्त जैन समाज के उपासकों द्वारा पूजा की सुविधा के लिए किया जाएगा न कि केवल एक सम्प्रदाय के लिए।

इन मुकदमों और अपीलों में दिगम्बर समाज की ओर से समस्त कार्रवाई अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुम्बई द्वारा की गई थी जिसके अध्यक्ष साहू रमेशचन्द्र जैन थे और इसमें श्री वसंत भाई दोशी तथा डॉ. डी. के. जैन, भू.पू. न्यायाधीश, ने सक्रिय भाग लिया।

लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स में अंकन

उल्लेखनीय है कि जयपुर की 'लिटिल वंडर' १२ वर्षीया अस्मिता काला द्वारा १११ घड़े सिर पर रख कर किए गये भवई नृत्य को "सबसे अधिक घड़े सिर पर रखकर भवई नृत्य" रिकार्ड प्रस्तुति मानते हुए लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स ने अपनी २००४ की पुस्तक में मान्यता दी है। कु. अस्मिता द्वारा अन्य उत्कृष्ट उपलब्धियों के साथ यह उपलब्धि अर्जित करना सम्पूर्ण समाज के लिए गौरव का विषय है।

जैन वधू-वर सम्मेलन

श्री दिगंबर जैन सैतवाल सेवामंडल द्वारा संचालित जैन वधू-वर सूचक समिति, सोलापुर, ने ३१ अक्टूबर, २००४ को हुतात्मा स्मृति मंदिर में जैन वधू-वर परिचय सम्मेलन आयोजित किया जिसमें महाराष्ट्र और अन्य राज्यों के लगभग पांच हजार दिगंबर तथा श्वेतांबर जैन वधू-वरों को आमंत्रित किया।

अहिंसा इंटरनेशनल वर्ष २००४ के पुरस्कारों हेतु प्रस्ताव आमंत्रित

१. अहिंसा इंटरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार (राशि ३१,०००/-) जैन साहित्य के विद्वान को उनके हिन्दी एवं अंग्रेजी के समग्र साहित्य अथवा एक कृति की श्रेष्ठता के आधार पर। लिखित पुस्तकों की सूची तथा २ श्रेष्ठ पुस्तकें भेजें।

२. अहिंसा इन्टरनेशनल भगवान शोभालाल जैन शाकाहार तथा जीवदया एवं रक्षा पुरस्कार (राशि २१,०००/-)- शाकाहार प्रसार तथा जीवदया एवं रक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कर्मठ कार्यकर्ता को उनके कार्य की श्रेष्ठता के आधार पर।

३. अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार (राशि २१,०००/-) रचनात्मक जैन पत्रकारिता की श्रेष्ठता के आधार पर।

नाम का सुझाव स्वयं लेखक/कार्यकर्ता/संस्था अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा **३० जनवरी, २००५** तक निम्न पते पर लेखक/कार्यकर्ता/पत्रकार के पूरे नाम व पते, जीवन परिचय और संबंधित क्षेत्र में कार्य विवरण सहित व पासपोर्ट आकार के २ फोटो सहित आमंत्रित हैं। पुरस्कार नई दिल्ली में लगभग अप्रैल २००५ में भव्य समारोह में भेंट किये जायेंगे। **संपर्क-** १. श्री सतीश कुमार जैन, महासचिव, अहिंसा इण्टरनेशनल, सी।।।/३१२६, वसंत कुंज, नई दिल्ली-११००७० २. श्री प्रदीप कुमार जैन, सचिव, अहिंसा इण्टरनेशनल, ४६८७, उमराव गली, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-११०००६

त्रिदिवसीय सर्वोदय विद्वत्संगोष्ठी-

सतना में ४, ५, व ६ सितम्बर को एक त्रिदिवसीय सर्वोदय विद्वत्संगोष्ठी हुई जिसमें देश के २५ ख्यातिप्राप्त विद्वानों ने सहभागिता की। तीन दिन तक प्रतिदिन तीन सत्रों में चली इस संगोष्ठी में क्रमशः व्रती राकेश भैया, सागर ने **'तत्त्वार्थसूत्र** की व्याख्याओं का वैशिष्ट्य'; श्री निर्मल जैन, सतना ने **'तत्त्वार्थसूत्र** में रत्नत्रय की विवेचना'; श्री मूलचंद लुहाड़िया, किशनगढ़ ने 'सम्यक्त्व का स्वरूप एवं साधन : एक विमर्श'; डॉ. श्रेयांस कुमार, बड़ौत ने 'जीव के असाधारण भावों की विवेचना आधुनिक संदर्भ में'; श्री अशोक कुमार जैन, ग्वालियर ने **'तत्त्वार्थसूत्र** में प्ररूपित लिंग व्याख्या एवं आधुनिक विचार'; डॉ. निहालचंद जैन, बीना ने 'अजीव तत्त्व : आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में'; श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद ने 'व्यक्तित्व के विकास में बाधक कारक'; पं. शिवचरण लाल, मैनपुरी ने **'तत्त्वार्थसूत्र** के आधार पर पुण्य-पाप की मीमांसा'; प्रो. रतनचंद, भोपाल ने 'कर्मास्रव के कारणः उहापोह'; श्री सुरेश जैन, भोपाल ने **'तत्त्वार्थसूत्र**- ऐन इम्पोर्टेन्ट सोर्स ऑफ इन्डियन लॉ'; श्री अनूपचंद जैन, फिरोजाबाद ने 'सल्लेखना, समाधि भारतीय दण्ड विधान के परिप्रेक्ष्य में'; डॉ. नीलम जैन, गुड़गांव ने **'तत्त्वार्थसूत्र** में वर्णित श्रावकाचार का समाजशास्त्रीय अध्ययन'; प्रो. एल. सी. जैन, जबलपुर ने 'जैन कर्मवाद और **तत्त्वार्थसूत्र**'; डॉ. फूलचंद प्रेमी, वाराणसी ने 'ध्यान विषयक मान्यताओं का समायोजन'; पं. रतनलाल बैनाड़ा आगरा ने 'मुक्त जीव और मुक्ति का स्वरूप'; डॉ. नलिन के. शास्त्री, दिल्ली ने '**तत्त्वार्थसूत्र** का छठवां अध्याय मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में'; डॉ. सुरेशचंद जैन, दिल्ली ने **'तत्त्वार्थसूत्र** में रत्नत्रय की विवेचना'; और श्री सिद्धार्थ जैन, सतना ने 'असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा : एक चिन्तन' विषयक अपने शोध-पत्रों का वाचन किया। प्रत्येक सत्र की समाप्ति पर उसकी अध्यक्षता कर रहे विद्वान् ने अपना समीक्षात्मक उद्बोधन किया। मुख्यतः **तत्त्वार्थसूत्र** पर आधारित इस संगोष्ठी का समापन मुनि श्री प्रमाणसागरजी के प्रवचन से हुआ और इसका उद्घाटन कप्तान अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा के कुलपति डॉ. ए. डी. एन. बाजपेयी द्वारा किया गया था। फिरोजाबाद के एडवोकेट श्री अनूपचंद जैन इस संगोष्ठी के मुख्य संयोजक रहे और सतना के सर्वश्री सिद्धार्थ जैन एवं सिंघई जयकुमार जैन ने स्थानीय संयोजक की भूमिका का निर्वहन किया।

जैन संस्कृति : संरक्षण व संवर्द्धन पर राष्ट्रीय संगोष्ठी व कार्यशाला-

ग्वालियर में ३० सितम्बर व १ अक्टूबर को एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी पांच सत्रों में सम्पन्न हुई जिसमें जैन संस्कृति के संरक्षण व संवर्द्धन हेतु विविध विषयक शोध पत्रों का वाचन करने हेतु देश के विभिन्न भागों से पधारे लगभग ३० विद्वानों ने सहभागिता की तथा सराक बंधुओं ने कार्यशाला में अपनी प्रतिभागिता निभाई। इस संगोष्ठी व कार्यशाला का संयोजन-संचालन सागर के डॉ. संजीव सर्राफ ने किया। पू. उपाध्याय ज्ञानसागर जी ने सराक संस्कृति की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उन्हें समाज की मूल धारा से जोड़ने की प्रेरणा दी। इस अवसर पर अनेकांत ज्ञान मंदिर बीना द्वारा लगायी गई जैन पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी तथा सराक क्षेत्र के शिक्षण शिविर का उद्घाटन भी हुआ। साथ ही **'ज्ञानश्री'** पत्रिका, डॉ. कुन्दनलाल जैन की **'दिल्ली जैन ग्रन्थ रत्नाकर'**, श्री बाबूलाल सुधेश की **'स्वतंत्र रचनावली'** तथा डॉ. अनुपम जैन आदि द्वारा सम्पादित **'जैन पुस्तकालय व शोध संस्थान'** पुस्तकों का विमोचन भी हुआ।

पं. नाथूराम प्रेमी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी-

ग्वालियर में २, ३, व ४ अक्टूबर को पं. नाथूराम प्रेमी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा हेतु देश के विभिन्न भागों से पधारे लगभग २० विद्वानों ने सहभागिता की। इस अवसर पर पंडित जी के प्रपौत्र श्री मनीष मोदी भी मुम्बई से पधारे और उन्होंने प्रेमी जी की 'जैन साहित्य एवं इतिहास' पुस्तक का पुनर्मुद्रण शीघ्र ही करने की सूचना दी।

तमिलनाडु के जैन पुरातत्त्व पर संगोष्ठी-

११ अक्टूबर को चेन्नई में मद्रास विश्वविद्यालय में वहाँ के प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग तथा तीर्थ संरक्षिणी महासभा की तमिलनाडु शाखा के संयुक्त तत्वावधान में तमिलनाडु के जैन पुरातत्व आदि पर एक संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसका उद्घाटन पूर्व पुलिस महानिदेशक श्री एस. श्रीपाल जैन ने किया और अध्यक्षता मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एस. सी. त्यागराजन ने की। संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा क्रमशः जिन ११ शोध-पत्रों का वाचन हुआ वे हैं- (1) Early Jain Caves by Mrs. Satyabhama Badrinath;. (2) Jain Temples by Mr. M. Seren, (3) Jain

Sculptural Art by Dr. A. Ekambarnathan; (4) Jain Bronzes by Dr. P.D. Balaji. (5) Jain Paintings By Mrs. R. Harini; (6) Jain Inscriptions by Dr. S. Rajavelu, (7) Jain Monastries by Prof. S. Thanyakumar; (8) Jain Manuscripts By Dr. C. K. Shivaprakashan; (9) Recent Jain Discoveries Inscriptions By Dr. P. Jaya Kumar; (10) Recent Jain Discoveries Sculptures By Mr. K, Sridharan; and (11) Protected Jain Monuments By Mrs. Satyabhama Badrinath.

उदीयमान चित्रकार-

इन्दिरानगर, लखनऊ निवासी ३५ वर्षीय श्री नीरज जैन ने जैन अभिवादन **'जय जिनेन्द्र'** को विभिन्न कलात्मक डिजाइनों में प्रस्तुत कर अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। २ अक्टूबर को इन्दिरानगर में हुए 'अहिंसा दिवस' समारोह में उन्होंने अपनी कलाकृतियां प्रदर्शित कीं; १४ अक्टूबर को महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए. पी.जे. अब्दुलकलाम के ७३वें जन्मदिन पर उन्हें 'जयजिनेन्द्र' के ७३ भिन्न-भिन्न चित्रों का सेट भेंटस्वरूप भेजा और १५ नवम्बर को एच.ए.एल. में आयोजित मेले में अपनी लगभग १२५ कलाकृतियों की प्रदर्शनी लगाई। इस युवा चित्रकार में प्रगति की संभावनाएं निहित हैं।

पुस्तक- लोकार्पण

सूरत में आयोजित श्रावकाचार संगोष्ठी में डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली, द्वारा सम्पादित **'प्राकृत एवं जैन विद्या शोध सन्दर्भ'** के तृतीय संस्करण, जिसमें भारतीय विश्वविद्यालयों से हुये ११०० जैन शोध प्रबन्धों तथा विदेशी विश्वविद्यालयों से हुए १३१ शोध प्रबन्धों का परिचय है, का लोकार्पण किया गया।

२० अक्तूबर को श्रवणबेलगोल में डॉ. नन्दलाल जैन, रीवा, द्वारा अंग्रेजी में अनुदित और डॉ. अशोक जैन, रुड़की द्वारा सम्पादित **षट्खण्डागम** ग्रन्थ की **धवला टीका** (प्रथम पुस्तक) का लोकार्पण किया गया।

वहीं पर स्व. पं. फूलचन्द्र शास्त्री जन्म शताब्दी समारोह में पण्डित जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाशित ग्रन्थ **पण्डित जी** का भी लोकार्पण हुआ।

अभिनन्दन

श्रीमती कामिनी जैन 'चैतन्य', जयपुर को उनके शोध-प्रबन्ध **'वीरोदय महाकाव्य और भगवान महावीर के जीवन चरित्र का समीक्षात्मक अध्ययन'** पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

वर्ष २००४ में आचार्य विद्यासागर द्वारा रचित **'मूकमाटी'** पर ३ शोधार्थियों ने अपने शोध प्रबन्ध पूरे किये। **श्रीमती मीना जैन, अब्दुल्लागंज रायसेन** को उनके शोध-प्रबन्ध 'मूकमाटी का शैलीपरक अनुशीलन' पर बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल ने, **श्रीमती अमिता जैन, नई दिल्ली** को उनके शोध-प्रबंध 'हिन्दी महाकाव्य परम्परा में मूकमाटी का अनुशीलन' पर तथा **सुश्री रश्मि जैन बीना, सागर** को उनके शोध-प्रबंध 'आचार्य विद्यासागरजी के साहित्य में उदात्त मूल्यों का अनुशीलन' पर डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

साध्वी श्री लक्ष्यपूर्णा श्री को उनके शोध-प्रबन्ध **'जैन प्राकृत आगमों में स्याद्वाद-नय एवं सप्तभंगी का समीक्षात्मक अध्ययन'** पर जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

१८ जुलाई, २००४ को आचार्य आनन्दऋषि साहित्य निधि, हैदराबाद द्वारा साहित्यकार **डॉ. पी. बी. विजयन, कोच्चि (केरल)** को १४ वाँ **'आचार्य आनन्दऋषि साहित्य पुरस्कार''** प्रदान किया गया।

२५ जुलाई को कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में प्राचीन मराठी जैन साहित्य के वरिष्ठ विद्वान् **डॉ. सुभाष चंद्र अक्कोले (महाराष्ट्र)** को वर्ष २००४ का **चारित्र चक्रवर्ती** पुरस्कार प्रदान किया गया।

डॉ. भागचंद 'भास्कर', नागपुर को प्राकृत एवं पालि भाषा में उल्लेखनीय अवदान हेतु वर्ष २००४ का **राष्ट्रपति पुरस्कार** प्रदान किये जाने की स्वतन्त्रता दिवस पर घोषणा की गई।

सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, में रीडर एवं जैन दर्शन विभाग के अध्यक्ष **डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी'** को विश्वविद्यालय कार्यसमिति ने कैरियर एडवांसमेन्ट योजना के अन्तर्गत प्रोफेसर पद पर प्रोन्नत किया।

२६ अगस्त को **ब्र. विद्युल्लता शहा** (संचालिका- श्राविकाश्रम, सोलापुर) को महाराष्ट्र के राज्यपाल द्वारा **'महाकवि कालिदास संस्कृत-साधना पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

प्रतिष्ठाचार्य **डॉ. विमल कुमार जैन, जयपुर** को शिक्षक दिवस पर शैक्षिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में उनके शोधपूर्ण कार्य एवं उल्लेखनीय सेवाओं हेतु राजस्थान सरकार का **सर्वोच्च राज्य स्तरीय पुरस्कार-२००४** से सम्मानित किया गया। उक्त अवसर पर राज्यपाल द्वारा उनकी शोधपूर्ण कृति **'अरुणोदय'** का विमोचन भी किया गया।

श्री प्रदीप कुमार जैन आदित्य, झांसी से इस वर्ष उ.प्र. विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए।

२४ अक्टूबर को सूरत में आयोजित अ.भा. जैन पत्रकार संघ नई दिल्ली के पाँचवे अधिवेशन में **डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा,** सम्पादक-दिशा बोध कोलकाता को उक्त पत्रकार संघ का राष्ट्रीय उपाध्यक्ष मनोनीत किया गया।

डॉ. (श्रीमती) राका जैन, लखनऊ को दिनांक २५ अक्टूबर को **गुरु गोपालदास बरैया स्मृति पुरस्कार, २००३** से सम्मानित किया गया।

२७ अक्टूबर को कुण्डलपुर (नालन्दा) में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की ओर से वर्ष २००३ का **(१) स्व. चन्दारानी जैन, टिकैतनगर स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार पं. खेमचंद जैन, जबलपुर को** तथा (२) **स्व. रूपाबाई जैन, सनावद स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार डॉ. (कु.) मालती जैन, मैनपुरी** को प्रदान किया गया।

सुश्री शीतल जैन, बीकानेर को ऑल इण्डिया मैनेजमेंट एसोसियेशन द्वारा संचालित स्नातकोत्तर डिप्लोमा (व्यवसाय प्रबंधन) में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर संस्थान के वार्षिक समारोह में स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया।

श्री सुवालाल बाफना (महाराष्ट्र) अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्विरोध निर्वाचित हुए।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

१० सितम्बर, २००४ ई. को बैंगलोर में दया शान्ति चेरिटेबिल मेडिकल एण्ड डेन्टल क्लीनिक की संचालिका धर्मनिष्ठ श्राविका, ७६ वर्षीया **दयाबहन शान्तिलाल शेठ** का देह विलय हो गया।

जैन समाज के शीर्ष नेता एवं पत्रकारिता के शिखर पुरुष का अवसान-

२२ सितम्बर, २००४ ई. को दिल्ली में बहुआयामी व्यक्तित्व वाले साहू रमेशचंद्र जैन का निधन हो गया। विगत एक वर्ष से वह फेफड़े के कैंसर से पीड़ित थे। १५ अगस्त, १६२५ ई. को नजीबाबाद में रायबहादुर साहू जगमंदर दास जैन के पुत्र रूप में जन्मे रमेशचन्द्र जी ७६ वर्ष के थे। उनका शिक्षा, समाजसेवा, धर्मोत्थान एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा। वह भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी, टाइम्स ऑफ इण्डिया समाचार पत्र समूह के कार्यकारी निदेशक, टाइम्स ऑफ इण्डिया के प्रबन्ध सम्पादक और नवभारत टाइम्स के सम्पादक भी रहे। इकानामिक टाइम्स और सांध्य टाइम्स के प्रकाशन का दायित्व भी उन्होंने बड़ी कर्मठता से निभाया। न्यूज एजेंसी टाइम्स ऑफ इण्डिया, इण्डियन न्यूज पेपर सोसायटी तथा भारत सरकार के भारतीय जनसंचार संस्थान के भी वह अध्यक्ष रहे। पत्रकारिता में दीर्घ अनुभव के कारण उन्हें पत्रकारिता का शिखर पुरुष कहा जाता था। उनके उत्कृष्ट योगदान हेतु गुरुकल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ने उन्हें 'विद्या वाचस्पति'; तथा बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय ने 'वारिधि' (डी.लिट्) की मानद उपाधियों से सम्मानित किया था।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा तीर्थराज सम्मेदशिखर ट्रस्ट के अध्यक्ष रहे साहू रमेशचंद्र जी तीर्थक्षेत्रों के उद्धार के साथ-साथ अनेक शैक्षणिक संस्थाओं से भी सम्बद्ध रहे। प्राकृत शोध संस्थान वैशाली और कुन्दकुन्द भारती ट्रस्ट (नई दिल्ली) के वह अध्यक्ष हुए। टाइम्स आई रिसर्च फाउण्डेशन, टाइम्स ऑफ इण्डिया रिलीफ फण्ड तथ साहू जैन ट्रस्ट के प्रमुख ट्रस्टी रमेश चन्द्र जी को समाज कल्याण के कार्यों से लगाव रहा।

अपने पीछे पत्नी चन्द्रकान्ता और पुत्रद्वय सर्वश्री अखिलेश और शैलेश को छोड़ गये साहू रमेशचन्द्र जी अपनी समाज के उदार दृष्टिकोण वाले शीर्ष नेता थे। उनके निधन से समाज को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिरशांति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

श्री सुभाष जैन, शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली, ने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के **शोध पुस्तकालय** को अपने बाल साहित्य प्रकाशनों की मार्च २००४ में भेंट की गई ४२ पुस्तकों (मूल्य रु. १,०८५/-) के क्रम में ६६ और पुस्तकें (मूल्य रु. ३,३६०/-) भेंट स्वरूप प्रदान की।

डॉ. एस. के. जैन, सुपुत्र श्री चन्द्र कुमार जैन वैद्य, नया गाँव, माडल हाउस, लखनऊ ने **शोध पुस्तकालय** हेतु रु. ३,०००/- भेंट किये।

श्री अजित प्रसाद जैन, महामंत्री, ती.म.स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., ने दिनांक २१.८.०४ को अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रिय सूर्यकान्त की दूसरी पुण्यतिथि पर उसकी स्मृति में रु. १०१/- तथा अपने पूज्य पिताजी बा. पारसदास जी की ४८वीं पुण्यतिथि और अपनी धर्मपत्नी धनवती जैन की ११वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में रु. १०१/- समिति के **शोध पुस्तकालय** को भेंट किये।

श्री अजित प्रसाद जैन, महामंत्री ती.म. स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र. ने दिनांक २५.१०.०४ को सम्पन्न अपने पौत्र चि. दीपक के स्वस्तिमती पूजा संग पावन परिणय के उपलक्ष मे **शोधादर्श** को रु. १०१/- भेंट किये।

अजमेर से प्रकाशित मासिक **'स्वतंत्र जैन चिन्तन'** ने अपने अंक ६-१० (सित. -अक्टू. ०४) में पृ. २६ व ६६-७० पर **शोधादर्श-५३** में पृ. ६-८ पर प्रकाशित डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के लेख 'स्वस्तिक' को पुनः प्रकाशित किया है।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श- ५३ में इंजी. नीलम कान्त द्वारा 'इतिहास बनता जैन इतिहास' आलेख में व्यक्त पीड़ा से शतप्रतिशत सहमत हूँ। 'सण्णा' पर डॉ. ऋषभचन्द्र जैन का आलेख गहन चिन्तन एवं शोध का परिणाम है। डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव ने 'श्रीवत्स' पर अनुपम सामग्री प्रस्तुत की है। डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी ने 'कुछ कहिए, कुछ सुनिए' के माध्यम से समाज का चित्र उतारा है।

भाई रमा कान्त की कविताएं गंगा स्नान कराने में समर्थ हैं और स्व. बाबूजी (डॉ. ज्योति प्रसाद जी) के लेख तो उनकी याद दिला देते हैं। उन्हें मैंने सदैव गुरु का दर्जा दिया है।

- डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

अंक ५३ का कलेवर आकर्षक एवं सामग्री पठनीय है।

- डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ

शोधादर्श जुलाई २००४ का अंक मिला। एक ही बैठक में स्वाध्याय कर गया। अनेक तथ्य अवगत हुए। कृतज्ञ हूँ।

- डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

शोधादर्श अपने नाम के अनुरूप शोध जगत के लिये आदर्श तो है ही, शोध का निरूपण करने वाली आदर्श पत्रिका भी है।

- डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

शोधादर्श जुलाई २००४ में श्री रमा कान्त का 'श्री तारण स्वामी' शीर्षक से शोधपूर्ण लेख अच्छा, प्रभावपूर्ण व आकर्षक है।

- श्री दिनेश कुमार जैन, सागर

शोधादर्श-५३ में 'चिन्तन कण' के अन्तर्गत डॉ. शशि कान्त के सभी विचार अधिक ग्राह्य हैं। डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी का पत्र भी 'अरहंत' के संदर्भ में डॉ. शशि कान्त के विचारों को उपयुक्त मानता है। 'समाचार विमर्श' में श्री अजित प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत सभी समाचार प्रासंगिक हैं। श्री रमा कान्त की चुटीली क्षणिकाएं प्रभावी हैं और 'पन्द्रह अगस्त' लेख विशेष ज्ञानवर्धक व हमें गौरवानुभूति प्रदान करने वाला है।

- श्री आदित्य जैन, कानपुर

शोधादर्श-५३ में सम्पादकीय तथा अन्य सभी लेख पठनीय हैं। श्री रमा कान्त ने श्री तारणस्वामी के बारे में ऐतिहासिक जानकारी के साथ लिखा है। श्री अजित प्रसाद जैन ने समाज सुधार में धर्म गुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला है। हमारे मुनिगण एवं आर्यिकायें उनके सुझावानुसार समाज को सही मार्गदर्शन देकर समाज का उपकार कर सकते हैं। डॉ. ऋषभचंद्र जैन का 'सण्णा : मूलवृत्तियों की जैन अवधारणा' और कु. स्वयंप्रभा पि. पाटील का 'जैन श्रमणाचार में प्रतिक्रमण का स्थान' शोधपूर्ण लेख हैं। **शोधादर्श** एक संग्रहणीय, निराली और बहुत उपयोगी पत्रिका है।

- डॉ. ताराचंद्र जैन बख्शी, जयपुर

शोधादर्श- जुलाई २००४ में 'गुरुगुण-कीर्तन' में सुधारवादी संत तारण स्वामी का सम्पूर्ण परिचय प्रस्तुत कर अपने उदारवादी दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया है। 'स्वस्तिक' पर आदरणीय ज्योति प्रसाद जी का आलेख और 'श्रीवत्स' पर डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव का गवेषणात्मक निबन्ध शोधार्थियों के लिये विशेष रूप से उपादेय है। 'इतिहास बनता जैन इतिहास' में इंजी. नीलमकान्त जैन ने कटु सत्य को जिस निर्भीकता से उजागर किया है, वह उनके नैतिक साहस का परिचायक है। **शोधादर्श** तो मेरी दृष्टि में-

आदर्श शोध का यह तो होना ही था
संदेश बोध का जन्मा था यह
अज्ञान के अंधेरे में, 'ज्योति' के प्रसाद से,
चमकता जोत सा।।१।। ज्योति से ज्योति जले।।२।।

- डॉ. (कु.) मालती जैन, मैनपुरी

'पन्द्रह अगस्त' लेख में शहीद साताप्पा टोपण्णावर तथा उदयचन्द जैन को स्वदेश भक्ति, वीरता और साहस भरी कहानी को पढ़कर मन श्रद्धा से भर उठा। श्री रमा कान्त ने बड़ी खोज से उनके चरित्र का चित्रण किया है। डॉ. महावीरप्रसाद जैन 'प्रशान्त' की रचना अच्छी लगी। डॉ. गणेशदत्त सारस्वत के छन्द सुन्दर सुगठित तथा भावपूर्ण हैं।

प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जी ने अपनी 'अन्तिम अभिलाषा' में जो कहा है वह तो एक कर्मयोगी की साध है ही। ईश्वर उन्हें शक्ति और बल दें ताकि वे अधिक समय तक भक्ति-साधना और साहित्य-साधना कर सकें।

- डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श जुलाई अंक में पृ. ७४ पर नज़र जाते ही मेरे भाव हुए हैं कि आने वाली पीढ़ियों की जानकारी हेतु आ. अजित प्रसाद जी के ८६ वर्षीय जीवन के उनके कृतित्व का लेखा प्रकाशित किया जाय।

- श्री सुरेश जैन 'सरल', जबलपुर

I duly received 'Shodhadarsh'-53, and went through it. As usual, it proved to be a treasure house of knowledge, and learnt quite a few new things. It is indeed a pleasant and rewarding exercise to go through the contents of 'Shodhadarsh'.

- Sri Shanti Prakash Jain, Meerut

जैन पत्रकारिता में **शोधादर्श** के माध्यम से जो आदर्श स्थापित किया गया है, वह हम सभी के लिए अनुकरणीय है।

- डॉ. शिवप्रसाद, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी

शोधादर्श-५३ में मेरे लेख 'श्रीवत्स' के साथ डॉ. शशिकान्त की तत्सम्बन्धी टिप्पणी भी प्रकाशित की है। प्रसन्नता है कि मंगल प्रतीक 'स्वस्तिक' के सम्बन्ध में विद्वद्वर डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का १९७५ में प्रकाशित लेख इसी अंक में पुनर्प्रकाशित किया जिसमें मुझे एकाधिक महत्वपूर्ण तथ्यों का संकेत प्रतिबिम्बित जान पड़ता है। 'गुरुगुण-कीर्तन' अत्यन्त सराहनीय-संग्रहणीय विषय है।

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ

तिरपन शोधादर्श का प्राप्त हुआ शुभ अंक
हुआ प्रफुल्लित मन मेरा, पढ़ा आदि से अंत।
'तारण स्वामी' संत का जीवन परिचय सार
रमाकान्त जी ने दिया है अनुपम उपहार।
'डाक्टर ज्योति प्रसाद' का 'स्वस्तिक' लेख विशेष
स्वस्तिक सत्ता का विशद करता है उल्लेख।
महावीर के संघ का अति विस्तृत परिवार
परिचय 'ए. पी. जैन' ने दिया सहित विस्तार।
'नीलम जैन' बता रहे जैनों का इतिहास
है स्वतंत्र निरपेक्ष वह निजता रखता खास।
'स्वयंप्रभा' जी का विशद ओजपूर्ण है लेख
'प्रतिक्रमण' के रूप की चर्चा करे विशेष।

'चिन्तन कण' बहुमूल्य हैं, शशीकान्त का लेख
गागर में सागर भरा, देता ज्ञान विशेष।
'आत्म निवेदन' में 'सारस्वत' बता रहे हैं कुछ ऐसा
नहीं वासना तज पाता कुछ फंसा मोह में मन ऐसा।
'रमाकान्त' जी की 'क्षणिकाएं' हैं वे गहरा व्यंग्य लिए
कर देती मजबूर सोचने को कुछ ऐसा ढंग लिए।
श्री 'प्रशांत' निज कविता में जीवन का तत्व बताते हैं
'स्वयं आत्म पथ अपना पाना होगा' वे बतलाते हैं।।
अन्य सभी स्तंभ यथावत देते विशद जानकारी
ज्ञान समाया है उनमें जो सबको ही है हितकारी।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन, लखनऊ

शोधादर्श में पत्रिका के नाम के अनुरूप शोधपूर्ण लेख समाज को पढ़ने को प्राप्त होते हैं। अंक ५३ में 'गुरुगुण-कीर्तन' के अन्तर्गत 'श्री तारण स्वामी' लेख के प्रकाशन हेतु साधुवाद।

- श्रीमंत डालचंद्र जैन, सागर

शोधादर्श-५३ की सामग्री पठनीय व मननीय है। मनुष्य गति में नरकों की अनुभूति सम्बन्धी श्री सुखमालचंद जी का चिन्तन उत्तम है।

- श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

शोधादर्श-५३ गवेषणात्मक एवं सूचनाप्रदायी है। जैन सन्त श्री तारणस्वामी का बुन्देलखण्ड में प्रादुर्भाव हम बुन्देलखण्डवासियों के लिये गौरव का विषय है। उनकी शुद्धात्मा की संदेशना ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर वाङ्मय में भी अन्तर्निहित है। मांगलिक प्रतीकों 'स्वस्तिक' एवं 'श्रीवत्स' पर क्रमशः (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन व डॉ. ए. एल. श्रीवात्सव के लेख अत्यन्त उपयोगी व शोधपूर्ण हैं। श्री अजित प्रसाद जैन के सम्पादकीय से विदित होता है कि महावीर के समय में समाज में नारियों को पर्याप्त धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। मूलवृत्तियों पर डॉ. ऋषभचन्द्र जैन का लेख वैदुष्यपूर्ण है। शोध छात्रायें कु. रेखा जैन और कु. स्वयंप्रभा दि. पाटील के लेख छापकर नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करने का स्तुत्य कार्य किया गया है।

- डॉ. राम सजीवन शुक्ल, कोंच

– **शोधादर्श-५३** अन्त तक चिन्तनीय, शोधपरक सामग्री से युक्त है। तारणस्वामी, स्वस्तिक, श्रीवत्स, चिन्तन-कण, इतिहास बनता जैन इतिहास, ज्योति अमर है आदि श्लाघनीय आलेख हैं।

आचार्य श्री विद्यानन्द मुनिश्री का कथन, आचार्य विद्यासागर मुनिराज के प्रवचनांश प्रेरणास्पद एवं स्तुत्य हैं। समाचार विविधा, मेरी अंतिम अभिलाषा, अभिनन्दन आदि शीर्षक नयी पीढ़ी के युवकों तथा समाज के लिये मार्गदर्शक, दिशाबोधक, तथा अत्यंत उपयोगी हैं।

– डॉ. श्रीमती रमा जैन, छतरपुर

शोधादर्श-५३ पूरा अंक आद्योपान्त पढ़ गया। सम्पादकीय पठनीय है। 'श्रीवत्स' एवं 'स्वस्तिक' लेख शोधात्मक एवं संग्रहणीय हैं। कु. रेखा जैन का शोधात्मक लेख 'संस्कृत चम्पू काव्य परम्परा में पुरुदेव चम्पू का वैशिष्ट्य' प्रशंनीय है। 'समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो' में आपके विचार समयानुकूल हैं। **'चिन्तन कण'** चिन्तनशील हैं 'समाचार विमर्श' सदैव नयापन लिये होता है। इसमें कुछ न कुछ खट्टा-मीठा-चटपटा होता ही है। 'मंगलं भगवदो वीरो' के सम्बन्ध में यही कहना है कि इतिहास, आस्था-श्रद्धा के साथ छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिये। **शोधादर्श** द्वारा की जा रही सेवा का मूल्यांकन संभव नहीं है। पत्रिका ने अपना अलग मुकाम बनाया है

– पं. सुनील जैन 'संचय' जैनदर्शनाचार्य, नरवां (सागर)

शोधादर्श-५३, में कई नवीन जानकारियां प्राप्त हुईं। 'स्वस्तिक' और 'श्रीवत्स' लेख सारगर्भित-ज्ञानवर्द्धक हैं। 'सण्णाः मूलवृत्तियों की जैन अवधारणा' शोधपरक है। 'पुरुदेव चम्पू का बैशिष्ट्य' आकर्षक है। 'समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका' सामायिक है। 'चिन्तन-कण' ध्यान देने योग्य हैं। 'जग जीवन कितना नश्वर है' तथा 'आत्म निवेदन' रचनाएं आकर्षित करती हैं। 'साहित्य सत्कार' और समाचार सार भी ध्यान आकृष्ट करते हैं। **– श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर**

शोधादर्श-५३ आद्योपान्त पढ़ा। सदैव की भांति पठनीय है। रमाकान्त जी की क्षणिकाएं हमेशा की तरह चटपटी हैं। उनके द्वारा किया गया बलिदानियों का वर्णन पठनीय है। सम्पादकीय विचारणीय है। शिथिलाचार के विरुद्ध लिखने से कुछ न होगा। क्रान्तिकारी युवकों की टीम साम-दाम-दंड से इन्हें ठीक करेगी तभी जैन धर्म की ध्वजा फहरेगी। **– श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, नई दिल्ली**

शोधादर्श-५२ में प्रेमी जी के सम्बंध में श्री रमाकान्त का लेख पढ़कर लगभग ४७ वर्ष पूर्व का स्मरण हो आया जब मैं १९५७ में अपने पिताजी (श्री सुन्दरलाल वैद्य) के साथ प्रेमी जी के यहाँ ठहरा था। वह निश्चय ही बहुत ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ प्रकाशक थे। उस अंक का सम्पादकीय 'धार्मिक पत्रकारिता' निश्चय ही जैन पत्रकारों के लिये विचारोत्तेजक है। सम्पादकीय में उठाया गया 'गणिनी' का प्रश्न भी विचारोत्तेजक है। 'परमेष्ठी नमस्कार मंत्र' के अंत में आपके द्वारा निकाले गये इस निष्कर्ष से कि 'सिद्धों' से तात्पर्य दोनों केवलियों से है, मैं पूर्णतः सहमत हूँ।

अंक ५३ में 'वर्तमान समवशरण' और 'महात्मा' विषयक टिप्पणी पढ़कर आश्चर्य के साथ खेद इस बात पर होता है कि ये सभी कार्य जाने-माने विद्वानों-पंडितों की देखरेख में उन्हीं के निर्देशानुसार होते हैं, और कोई इनका विरोध नहीं करता।

- डॉ. महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद

शोधादर्श-५२ में 'अरिहंत' और 'अरहंत' शब्दों की चर्चा बड़े विस्तार से लिखी गई थी जिसके मूल में विवाद का मुद्दा 'हन् हिसायाम्' धातु से था जो अहिंसा प्रेमियों को रुचिकर नहीं जंचता। मेरा सुझाव है 'अर्ह पूजायाम्' धातु का प्रयोग कर षष्ठी विभक्ति बहुवचन में 'अर्हताम्' शब्द ज्यादा उपयुक्त हो सकता है। 'णमो अर्हताम्' वाचन करते समय हिंसात्मक 'हन' धातु का ध्यान ही नहीं आवेगा। पूजार्थक 'अर्ह' धातु से बना 'अर्हत्' शब्द आगम सम्मत है, मान्य किया जा सकता है।

इसी प्रकार 'कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-पूजार्घ्यं' की इस पंक्ति "सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरादग्धाष्टकर्मेन्धनाः भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः' में 'अष्ट' शब्द गलत है। उसके स्थान पर 'अर्द्ध' शब्द होना चाहिये। क्योंकि अष्ट कर्मों के नाश हो जाने पर सिद्ध हो जाते हैं और उसके आधे चार अघातिया कर्मों के नष्ट होने पर जिन बनते हैं और उक्त पद में जिनदेवों को नमस्कार किया गया है।

- डॉ. कुन्दनलाल जैन, शहादरा

अनुक्रमणिका शोधादर्श ४६–५४

शोधादर्श ४२ में पृष्ठ ३४१–३८६ पर शोधादर्श १–४२ में प्रकाशित लेखों आदि की तथा शोधादर्श ४८ में पृष्ठ ७८–८६ पर शोधादर्श ४३–४८ में प्रकाशित लेखों आदि की अनुक्रमणिका दी गई थी। यहाँ उसके आगे शोधादर्श ४६–५४ में प्रकाशित लेखों आदि की अनुक्रमणिका दी जा रही है।

– रमा कान्त जैन

खण्ड–क : लेखक वृन्द

नाम लेखक	लेखन शीर्षक	अंक	पृष्ठ
१. श्री अंशु जैन 'अमर'	१. मील का पाषाण	४६	५२–५३
	२. अमर ज्योति	५०	४६–५०
	३. ज्योति अमर है	५३	५७–५८
२. श्री अशोक कुमार जैन	४. जीव का भी मरण होता है	५०	४६–४७
३. श्री उदयमुनि जी म.	५. निर्ग्रन्थ मेरे गुरु	५१	३८–४०
४. डॉ. ऋषभचंद जैन	६. सण्णा : मूलवृत्तियां (जैन अवधारणा)	५३	२०–२७
५. डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव	७. जैन वाङ्मय एवं कला में श्रीवत्स	५३	११–१६
६. जस्टिस एम. एल. (मांगीलाल जैन)	८. रामजन्म और तुलसीदास	५१	५७
	९. एसो पंच णमोयारो सूत्र से मंत्र	५२	२१–२७
७. श्री ओम पारदर्शी	१०. पारदर्शी–गीत	४६	४६
	११. धर्म का मूल सम्यग्दर्शन	५०	४३–४४ व ४७
८. डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	१२. जाग रे तू (पद्य)	५१	४०
	१३. आत्म निवेदन (पद्य)	५३	५३
९. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१४. तथाकथित 'जीवन्तस्वामी' प्रतिमा	४६	९–१२
	१५. तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति	५०	५–७
	१६. तीर्थंकर जन्म कल्याणक का एक प्रस्तरांकन	५१	८–१०

	१७. जैन गुफाएं तथा गुहा मंदिर	५२	८–१०
	१८. स्वस्तिक	५३	६–८
	१९. अरहंत या अरिहंत	५४	८–१०
१०. बा. ज्योति प्रसाद जैन देवबन्दी	२०. भगवान महावीर और महात्मा गांधी	५०	२३–३०
११. डॉ. जिनेन्द्र जैन	२१. जैन धर्म और नैतिकता	४९	१६–२०
१२. श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	२२. शान्ति के दूत त्रिशला –पूत (पद्य)	५०	५१
	२३ जै महावीर (पद्य)	५२	२७
	२४. महावीर गुणधाम (पद्य)	५४	६३
१३. श्री धन्य कुमार जैन	२५. जीव का मरण हिंसा नहीं	४९	५०
	२६. जीव कर्म स्मृतियों से बंधा है	५१	५३
१४. इंजी. नीलम कान्त जैन	२७ मंगल श्लोक की प्राचीनता	५१	१८
	२८. इतिहास बनता जैन इतिहास	५३	३१–३३
१५. डॉ. परमानन्द जड़िया	२९. महावीर भगवान हैं (पद्य)	४९	३५
	३०. श्रेष्ठ श्रावक; दिव्यता देह की (पद्य)	५०	५२
	३१. कर्म–पंथ निर्वाण (पद्य)	५१	६३
१६. सौ. पूजा जैन	३२. आओ कुछ ऐसा करें (पद्य)	५४	२८
१७. महात्मा भगवानदीन	३३. बेचारा सर्वज्ञ वाक्य का विश्वासी	५१	३५–३७
१८. श्री मनोहर मारवडकर	३४. स्वाध्याय करें (पद्य)	५२	३७
	३५. निसर्गोपचार अष्टक (पद्य)	५३	५०
	३६. मूलगुण	५४	४०
१९. डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशांत'	३७. मैं चेतन हूँ (पद्य)	५२	५६
	३८. स्वयं आत्म–पथ अपना पाना होगा (पद्य)	५३	५८

२०. डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	३६. बधाई गीत	४६	३७
	४०. गीत	५१	४७
	४१. जग–जीवन कितना नश्वर है (पद्य)	५३	५२
	४२. देखो सूरज आया द्वारे (पद्य)	५४	२६
२१. श्री मांगीलाल भूतोड़िया	४३. जर्मन विदुषी शार्लोटे क्राउजे	५२	५३–५८
२२. डॉ. रज्जन कुमार	४४. कर्मादान की प्रासंगिकता	५३	१७–१६ व २७
२३. डॉ. राजमल वोरा	४५. उत्तराध्ययन सूत्र में तीर्थंकर	४६	२१–२३
२४. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	४६. उत्पीड़क कल्कि राजा का बीज दग्ध करें	५१	४८–५०
२५. कु. रेखा जैन	४७. तत्त्वार्थ सूत्र	५१	२८–३४
	४८. पुरुदेव चम्पू का वैशिष्ट्य	५३	२८–३० व ३३
२६. साध्वी विजय श्री आर्या	४६. सामान्य केवली और अर्हन्त पद	५२	३३–३६
२७. आचार्य श्री विद्यानन्द महाराज	५० आगम चक्षु हैं	५३	५१
	५१. चेतन आत्मा का जीर्णोद्धार करें	५३	५१
	५२. आत्मानुशासन से ही देश की उन्नति संभव	५४	३६
२८. आचार्य श्री विद्यासागर महाराज	५३. ब्रह्मचारी आदर्श त्यागी बनें	५३	५५
२६. डॉ. विमल प्रकाश जैन	५४. हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण	५१	४१–४३
३०. डॉ. शशिकान्त	५५. जीवदया व्यवहार में	४६	३०–३१
	५६. शुचिता–सौम्यता–भव्यता	५०	३१–३२
	५७. ब्रह्मचारी सीतलप्राद	५१	१६–२७
	५८. 'अरिहंत' या 'अरहंत'	५२	२८–३२
	५६. 'अरिहंत' में भाव हिंसा	५३	४२

	६०. श्रीवत्स	५३	४२
	६१. आयागपट्ट	५३	४४
	६२. मथुरा से प्राप्त सं. २९९ का अभिलेख	५४	२१–२२
३१. श्री शान्तिलाल जैन बैनाड़ा	६३. मानव की जीवन यात्रा	४९	५१
३२. डॉ. शिवप्रसाद	६४. कल्पप्रदीप में वर्णित कुंडुगेश्वरनाभेयदेवकल्प	५२	४८–५२
३३. डॉ. शैलबाला शर्मा	६५. शाकाहार : महत्त्व और उपयोगिता	५२	४२–४६
३४. साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	६६. अमृत पेय–चाय	४९	४६–४८
	६७. बिना फैट का शुद्ध जायकेदार मक्खन	४९	४८–४९
	६८. आजकल ठंड के दिन हैं	५१	५६
	६९. जैन धर्म–दर्शन का संदेश	५३	४५–४६
३५. डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव	७०. वैशाली : महावीर युग में	५०	१८–२२
३६. डॉ. सत्यप्रकाश जैन	७१. विद्वत् परिषद् ने भी वासोकुण्ड को ही सही कुण्डलपुर स्वीकारा	४९	५४–५५
३७. श्री सनत कुमार जैन	७२. जैन जातियां	५१	५१–५२
३८. ब्र. सीतल प्रसाद	७३. ग़ज़ल	५०	५१
३९. श्रीमती सीमा जैन	७४. वीरता पुरस्कार	५१	७२
४०. श्री सुखमालचंद जैन	७५. हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण	४९	३२–३३
	७६. धर्म–अधर्म	५०	४५
	७७. शंका : उपगूहन	५१	४४–४५
	७८. मनुष्य गति में नरकों की अनुभूति	५३	४४–४५
	७९. दीपावली	५४	३८
४१. श्रीमती सुधा जिन्दल	८०. अर्जुन माली (नाटिका)	४९	३८–४५
४२. श्री सुरेन्द्र मुनि जी	८१. ज्ञातृपुत्र भगवान महावीर	४९	३४–३५

४३. श्री सुरेश जैन 'सरल'	८२. चिन्तन एक अनुभूति (पद्य)	५२	२०
	८३. नौवे दशक की ओर : श्री अजित प्रसाद जैन	५४	२३–२७
४४. डॉ. सूरजमुखी जैन	८४. जैन दर्शन में जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व	४६	२४–२७
४५. कु. स्वयंप्रभा पि. पाटील	८५. जैन श्रमणाचार में प्रतिक्रमण	५३	३४–३६
४६. डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी **शोध सारांश**	८६. कुछ कहिए, कुछ सुनिए	५३	४६–४८
४७. डॉ. (कु.) नीलम जैन	८७. वेदव्यास एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराणों का तुलनात्मक अध्ययन	५४	३०–३२

खण्ड ख : सम्पादक मण्डल

१. श्री अजित प्रसाद जैन, प्रधान सम्पादक

(अ) सम्पादकीय अग्रलेख

३२. कलिकाल तीर्थंकर अंकलीकर जी–अवर्णवाद की पराकाष्ठा ?	४६	१३–१५
३३. तीर्थंकर पार्श्वनाथ	५०	८–१७
३४. वीर निर्वाण स्थली पावा	५१	११–१७
३५. धार्मिक पत्रकारिता	५२	११–१६
३६. भगवान महावीर का संघ परिवार	५३	६–१०
३७. दिगम्बर जैन समाज व श्रमण संघों पर सशक्त नेतृत्व का एक ही तरीका	५४	११–२०

(आ) अन्य लेख–आदि

५२. हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा	५०	४१–४२
५३. परमेष्ठी नमस्कार मंत्र	५२	३८–४१
५४. समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका	५३	४०–४१
५५. मेरी अन्तिम अभिलाषा	५३	७४
५६. कुण्डगामंपुरं	५४	३६

(इ) तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

२०. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००२–२००३	५०	६०–६४
२१. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष २००३–२००४	५४	४४–४८

(ई) समाचार विमर्श

१३८. विद्वत् परिषद का २३वां अधिवेशन	४६	५६–५८
१३९. आचार्यश्री द्वारा विवाह–निषेध का उपदेश	४६	५८–५९
१४०. स्थानकवासी श्रमण संघ में फाड़	५०	६५–६७
१४१. पार्श्व ज्योति का घूमता आइना	५०	६७–६८
१४२. ब्राह्मण आर्यों ने नष्ट की थी सिंधु सभ्यता	५०	६८–६९
१४३. अयोध्या की विवादित भूमि जैनियों को दिलवाने की मांग	५१	५८–६०
१४४. अब पंचपरमेष्ठी नहीं षष्ठ परमेष्ठी	५१	६०–६१
१४५. नवग्रह शांति जिनमंदिर निर्माण	५१	६१–
१४६. तीर्थंकर ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या तीर्थ	५१	६२–६३
१४७. गुरु भवन	५२	६५
१४८. निर्वाण लाडू	५२	६५–६७
१४९. महासभा का प्रस्ताव : उपगूहन फिर बना श्रमण शिथिलाचार का रक्षक	५२	६७–६८
१५०. युग प्रधान अब महात्मा	५३	६६
१५१. मंगलं भगवदो वीरो	५३	६६–६८
१५२. त्रिकाल चौबीसी मन्दिर	५३	६८–७०
१५३. पार्श्व ज्योति का घूमता आइना	५३	७०
१५४. महाराष्ट्र शासन ने मुनि श्री तरुणसागर को राजकीय अतिथि का दर्जा दिया	५४	५२–५४
१५५. एक ६ वर्ष की बालिका की साध्वी दीक्षा	५४	५४–५५
१५६. भ. पार्श्वनाथ त्रिसहस्राब्दि महोत्सव	५४	५६
१५७. निर्वाण लाडू	५४	५६–५७
१५८. राजनेताओं के लिए भी शैक्षणिक योग्यता और प्रशिक्षण	५४	५७–५८
१५९. भट्टारक सम्मेलन	५४	५८–६०
१६०. ये महंगी चातुर्मास आमंत्रण पत्रिकाएं	५४	६०–६२
१६१. हमारे राजनेताओं का मांसाहार शौक : शाकाहार पर दुगना टैक्स	५४	६२
१६२. जवाहरात व्यवसायी बढ़ेर जी का मोक्षगमन	५४	६३

२. श्री रमा कान्त जैन, सह–सम्पादक

(अ) लेख आदि

१७. अकबर और जैन धर्म	५०	३३–४०
१८. श्रुत पंचमी पर्व और शोध पुस्तकालय स्थापना दिवस	५०	४८
१९. पाकिस्तान में जैन मन्दिर और जैन जन	५१	४४–४६ व ५०
२०. पन्द्रह अगस्त	५३	७१–७३
२१. जनगणना २००१–भारत में जैनधर्मानुयायी	५४	३३–३६
२२. भूले बिसरे : चित्रकार बसावनलाल, आगरा	५४	४१
कथाशिल्पी ऋषभचरण जैन	५४	४२–४३
२३. अनुक्रमणिका शोधादर्श ४६–५४	५४	७६–८६

(आ) गुरुगुण–कीर्तन

४१. जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर'	४६	१–८
४२. गुरुवर चैनसुखदास	५०	१–४
४३. पण्डित कैलाशचन्द शास्त्री	५१	१–७
४४. श्री नाथूराम प्रेमी	५२	१–७
४५. श्री तारण स्वामी	५३	१–५
४६. गुरुणां गुरु : गोपालदास वरैया	५४	१–७

(इ) सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं

४६ (६४); ५० (५२); ५१ (७); ५२ (२०); ५३ (५४); (३७)

खण्ड ग : विविध स्तम्भ

साहित्य सत्कार : ४६ (६६–७५); ५० (५३–५६); ५१ (६४–७०); ५२ (६०–६४); ५३ (५६–६५); ५४ (४६–५१) के अन्तर्गत ६७ कृतियों का परिचय / समीक्षा

समाचार विविधा : ४६ (६०–६३); ५० (७०–७२); ५१ (७१–७२); ५२ (७२–७३); ५३ (७५); ५४ (६४–६८)

अभिनन्दन : ४६ (७६–७७); ५० (७३–७८); ५१ (७२–७३); ५२ (७४–७६); ५३ (७६–७७); ५४ (६६–७०)

शोक संवेदन : ४६ (७७–७६); ५० (७८); ५१ (७३–७४); ५२ (७६–७७); ५३ (७८); ५४ (७१–७२)

आभार : ४६ (७६); ५० (७७); ५१ (७४); ५२ (७७); ५३ (७८); ५४ (७२)

पाठकों के पत्र : ४६ (८०–८६); ५० (७६–८६); ५१ (७५–८६); ५२ (७८–८६); ५३ (७६–८६); ५४ (७३–७८) के अन्तर्गत १६६ पाठकों के पत्र।

खण्ड घ : प्रकीर्ण

स्वास्थ्य चर्चा : (१) अच्छे स्वास्थ्य के लिए ताली बजाना काफी ५२ (४७)

(२) उच्च रक्तचाप से कैसे बचें ५३ (४६)

(३) शरीर में रेडियोधर्मी विकिरण से बचाव ५४ (३६)

शंका–समाधान– : (१) श्री शांतिलाल बैनाड़ा (आगरा) की शंकाएं और उनका समाधान ५२ (६६–७१)

(२) श्री कैलाशचंद जैन, कोलकाता की शंकाएं ५२ (७१)

संकलित : रात्रि भोजन के दोष ४६ (२०)

श्री वीर वर्धमान–स्तवन ४६ (४५)

कुन्दकुन्द–सूक्ति–सुधा ४६ (५३)

महावीर वाणी ४६ (१५); ५३ (७, ४७), ५३ (४८)

जिनवाणी ४६ (२३, २६); ५३ (३६, ५५)

ऋषभ–स्तवन ५४ (१०)

पार्श्वनाथ–स्तवन ५४ (२२)

नेमिनाथ–स्तवन ५४ (२८)

श्री जिनवाणी स्तुति ५४ (४७)

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– प्रधान सम्पादक